नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

बिगुल

मासिक समाचारपत्र • वर्ष 8 अंक 11-12 (संयुक्तांक)
दिसम्बर 2006-जनवरी 2007 • तीन रुपये • बारह पृष्ठ

नववर्ष के अवसर पर

गुज़रे दिनों की नाउम्मीदियों और आने वाले दिनों की उम्मीदों के बारे में कुछ बातें समस्याओं, चुनौतियों और ज़िम्मेदारियों के बारे में कुछ बातें

सम्पादक

इक्कीसवीं शताब्दी का एक और वर्ष बीत चुका है और 2007 का वर्ष आ चुका है। पहले के वर्षों की ही तरह गुजरा हुआ वर्ष भी व्यापक मेहनतकश जनता के लिए लगातार बढ़ती बेचैनी और घुटन से भरा हुआ एक और वर्ष रहा है। शासक वर्गों के विभिन्न धड़े जनता से निचोड़े गये मुनाफ़े के बँटवारे के लिए आपस में लड़ते रहे हैं, जाति और धर्म के नाम पर जनता को बाँटने के लिए बुर्जुआ राजनीतिक पार्टियाँ नये-नये मुद्दे उछालकर बदस्तूर वोट बैंक की राजनीति करती रही हैं, संसदीय सुअरबाड़े में पूँजी के वफ़ादार चाकर फालतू की बहसबाज़ी करते रहे हैं या सोते ऊँघते रहे हैं तथा समूचे शासक वर्ग और उनकी सभी राजनीतिक पार्टियों की आम सहमति से नवउदारवादी आर्थिक नीतियाँ बेलगाम लागू होती रही हैं और आम लोगों पर कहर बरपा करती रही हैं। गाँवों में पूँजी की मार लगातार छोटे-मँझोले किसानों को उनकी जगह-ज़मीन से उजाड़कर सड़कों पर धकेलती रही है और उजरती गुलामों की कतारों में इजाफ़ा करती रही है और किसानों की आत्महत्याओं के आँकड़े लगातार बढ़ते रहे हैं। महानगरों की सड़कें पर उमड़ते सर्वहाराओं के हुजूम को काबू में रखने और बाहरी इलाकों में धकेलने के लिए पूँजीवादी सत्ता बर्बर हमलावरों की तरह उनकी झुग्गी-बस्तियों को उजाड़ती-जलाती और बुलडोजरों से ज़मींदोज़ करती रही है। कारख़ानों में पचास-साठ रुपये दिहाड़ी पर बारह से चौदह घण्टों तक खटने वाले दिहाड़ी, अस्थायी और ठेका मजदूरों का जीवन और अधिक नारकीय होता गया है। यहाँ-वहाँ उठ खड़े होने वाले मज़दूरों के स्वयंस्फूर्त संघर्ष अधिकांशतः या तो पराजित होते रहे हैं या फिर बर्बर दमन का शिकार होते रहे हैं। सरकार और बुर्जुआ नेता लगातार पड़ोसी "दुश्मन" देश और आतंकवाद के विरुद्ध जुनूनी अंधराष्ट्रवादी नारे देते रहे हैं और हथियारों और क़ानूनों के सहारे असली लड़ाई, पहले की ही तरह, देश के भीतर देश की जनता की खिलाफ़ लड़ी जाती रही है।

गुजरे हुए साल ने खाये-पिये, अघाये-मुटियाये ऊपरी मध्य वर्ग और विशेष सुविधा-सम्पन्न बुद्धिजीवी समुदाय के मेहनतकश अवाम एवं जन सरोकारों के प्रति ऐतिहासिक विश्वासघात को थोड़ा और नंगा कर दिया है। दूसरी ओर, दशा-दिशा के हिसाब से निम्न मध्य वर्ग सर्वहारा वर्ग के जीवन और स्वप्नों-आकांक्षाओं के कुछ और निकट जा पहुँचा है। शिक्षा और स्वास्थ्य को सरकार की ज़िम्मेदारी के बजाय बाज़ार का बिकाऊ माल बना देने के लिए मनमोहन सिंह की सरकार ने 2006 में कुछ और महत्वपूर्ण प्रभावी कदम उठाये, पर इनका कोई संगठित कारगर प्रतिरोध सामने नहीं आया। जिस संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन की सरकार ने उदारीकरण- निजीकरण की नीतियों को कुशल और कुटिल ढंग से लागू किया है, उसमें संसदीय वामपंथी भी शामिल हैं। पूँजीवादी व्यवस्था की इस दूसरी सुरक्षा पंक्ति की अभी भी शासक वर्ग को ज़रूरत है। हुक्मरानों की फेंकी लाल मिर्ची खाकर संसदीय पिंजरे में फुदक-फुदककर नकली समाजवाद का गीत गाने वाले इन फरेबी तोतों की साख बचाने के लिए यह ज़रूरी था कि सरकार श्रमिकों के पक्ष में भी कुछ कदम उठाने का दिखावा करे। ग्रामीण रोजगार योजना का गुब्बारा इसीलिए फुलाया गया था। फिलहाल, दो सौ जिलों में ही इसे लागू किया गया, लेकिन इस ढकोसले की असलियत

(पेज 5 पर जारी)

सद्दाम को फाँसी : बर्बरों का न्याय

इराक के पूर्व राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन को मुकदमे की एक लंबी नौटंकी के बाद फाँसी की सज़ा सुनाई गयी और फिर 30 दिसम्बर की सुबह उसे अमली जामा भी पहना दिया गया। सद्दाम के साथ ही उनके सौतेले भाई बरजन इब्राहीम अल तिकरिती और इराकी क्रान्तिकारी न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश अवाद हामिद अल बांतर को भी फाँसी की सज़ा सुनाई गई है पर उन्हें कुछ दिन बाद फाँसी दी जायेगी।

न्याय का यह अमेरिकी स्वाँग बर्बर हत्या को न्यायसंगत ठहराने की एक असफल और बेशर्म कोशिश मात्र था। सद्दाम को जिस समय फाँसी दी गयी, उस समय अमेरिकी साम्राज्यवादी युद्ध सरदार जार्ज बुश सो रहा था। लेकिन सच यह है कि अरब धरती से लेकर ऐन पिछवाड़े लातिन अमेरिका तक से उठ रही जनाक्रोश की लहरों ने अमेरिकी साम्राज्यवादियों की पहले से ही नींद हराम कर रखी है। अब सद्दाम की फाँसी के बाद, अरब धरती पर अपनी चौधराहट जमाकर वहाँ की अकूत तेल सम्पत्ति को हड़पने के अमेरिकी मंसूबे मात्र दुःस्वप्न बनकर रह जायेंगे। अरब के जलते रेगिस्तान में अमेरिकी साम्राज्यवादी मंसूबों का जल कर राख हो जाना तय है। देखना सिर्फ यह है कि इसमें कितना समय लगता है!

सद्दाम हुसैन को "न्यायिक रास्ते से" मौत के घाट उतारने के लिए उन पर कुर्दों और शिया मुसलमानों के नरसंहार का आरोप लगाया गया। लेकिन जिस दौर में सद्दाम की सत्ता इराक में कुर्दों और बाथ पार्टी के विरोधी शियाओं का दमन कर रही थी, उस समय अमेरिकी साम्राज्यवादी पूरी तरह

(पेज 12 पर जारी)

नोएडा में ग़रीब मेहनतकशों के बच्चों की नृशंस हत्या का मामला

ये कंकाल एक धनपशु के घर से नहीं, पूँजीवादी व्यवस्था की आलमारी से बरामद हुए हैं!

वर्ष 2006 की आख़िरी रात को जब पंचसितारा होटलों, रेस्तरांओं और क्लबों में रंगारंग रोशनी के बीच धनपशुओं के झुण्ड के झुण्ड जाम से जाम टकरा रहे थे और उन्माद भरी चीख़-पुकार मचा रहे थे, उस समय नोएडा के सेक्टर 31 से सटे निठारी गाँव में मौत का सन्नाटा पसरा हुआ था। बीच-बीच निचाट अँधेरे को चीरते हुए करुण क्रन्दन के कुछ हृदयबेधी स्वर गूँज उठते थे।

दो दिन पहले ही गाँव के पास सेक्टर 31 में एक पूँजीपति के घर के पिछवाड़े के नाले से और आसपास की ज़मीन की खुदाई से कुछ अठारह बच्चों के कंकाल बरामद हुए थे। अगले दिन उस उद्योगपति मोहिंदर सिंह और उसके नौकर सुरेन्द्र की गिरफ़्तारी हुई। यह पता चला कि सुरेन्द्र आसपास के ग़रीब बच्चों को बहला-फुसलाकर मोहिंदर के घर लाया करता था और वे दोनों मनोरोगी, बच्चों से दुष्कर्म के बाद उनकी हत्या कर दिया करते थे। बच्चों के अधूरे कंकालों की बरामदगी से यह संदेह भी व्यक्त किया जा रहा है कि यह केवल दुष्कर्म और हत्या का ही नहीं बल्कि मानव अंगों के व्यापार का भी मामला है। ज्ञातव्य है कि मोहिंदर सिंह के मकान से ही सटा हुआ एक डाक्टर का भी बंगला है, जिसका नाम पहले भी ग़रीबों के गुर्दे निकालकर बेचने के मामले में सामने आया था, लेकिन क़ानूनी साक्ष्यों के अभाव में वह बेदाग़ बच निकला था। मोहिंदर का एक बंगला चण्डीगढ़ में भी है और वहाँ भी आसपास के कुछ ग़रीबों के बच्चे विगत कुछ वर्षों के दौरान ग़ायब हो चुके हैं। ऐसा संदेह किया जा रहा है कि नोएडा जैसा बर्बर कुकर्म चण्डीगढ़ के बंगले में भी हो रहा था।

विगत दो वर्षों के दौरान निठारी गाँव से ग़रीब मज़दूरों के 38 बच्चे और आसपास के इलाके से कुल 98 बच्चे ग़ायब हो चुके हैं। इन बच्चों के माँ-बाप जब भी पुलिस के पास गुमशुदगी की रिपोर्ट दर्ज़ कराने जाते थे तो उन्हें डरा-धमकाकर

(पेज 12 पर जारी)

गोरखपुर में हिन्दू फासिस्टों का सम्मेलन

(पेज 3 से आगे)

नेपाल की राजशाही के पतन पर यह चीखपुकार हताशा से उपजी हाहाकार के सिवा कुछ नहीं है। ऐसी चीख़-पुकारों पर इतिहास का एक आम विद्यार्थी भी कान नहीं दे सकता। दरअसल, इस चीख़-पुकार के पीछे असली चिन्ता दूसरी है। यह कि अमेरिकी साम्राज्यवाद की अगुवाई में जिन लुटेरी आर्थिक नीतियों का कहर दुनिया की मेहनतकश जनता के ऊपर बरपा हो रहा है उससे पैदा हो रहा आक्रोश कहीं नेपाल की तरह भारत सहित दक्षिण एशिया के अन्य देशों के आसमान को भी लाल न कर दे। इसीलिए केसरिया धुन्ध फैलाकर इस 'लाल ख़तरे' को टालने की कोशिशें हो रही हैं। 'हिन्दू राष्ट्र' के इन अलमबरदारों से पूछा जाना चाहिए कि उनका 'राष्ट्रीय गौरव' तब कहाँ चला जाता है जब वे सरकारों में बैठकर अमेरिका-यूरोप के साम्राज्यवादियों के तलुए चाटते हैं। देश के अधिकांश हिन्दू संगठनों के मातृ संगठन आर.एस.एस. की अमेरिका- परस्ती, पूँजीपरस्ती और आर्थिक- सामाजिक समानता के सिद्धान्तों के प्रति उसकी घृणा तो जगज़ाहिर है। आज से 57 साल पहले **आर.एस.एस.** के **अंग्रेज़ी मुखपत्र 'ऑर्गनाइज़र'** के **3 अप्रैल 1950 के सम्पादकीय** में अमेरिकापरस्ती की वकालत करते हुए जो पीड़ा व्यक्त की थी आज वह दूर हो गयी होगी। देखिये 'ऑर्गनाइज़र' में क्या लिखा गया था :

"अमेरिका भारत की मदद के लिए उतना उत्साही नहीं है क्योंकि भारत कम्युनिज़्म के खिलाफ़ उसके विश्व संघर्ष में सहयोग नहीं कर रहा है... हम भारत के लोग अपनी प्राचीन उदार परम्पराओं के चलते आंग्ल-अमेरिकी लोगों से अधिक निकट हैं।... ऐसा प्रतीत होता है कि अमेरिका के साथ जुड़कर ही एक राष्ट्र के रूप में हम अपने पूर्ण स्थान को प्राप्त कर पायेंगे।"

कहने की ज़रूरत नहीं कि आंग्ल-अमेरिकी उदार परम्पराएँ जिस रूप में 'इराक-अफ़गानिस्तान की जनता पर कहर बनकर बरस रही है' उससे हिन्दू राष्ट्रवादियों को कितना असीम-सुख प्राप्त हो रहा होगा। और आज जब भारतीय शासक वर्ग अमेरिका के साथ अच्छी तरह जुड़ गया है तो 'एक राष्ट्र के रूप में' उन्हें 'पूर्ण स्थान' मिलने में अब बहुत देर नहीं लगनी चाहिए!

पूर्वी उत्तर प्रदेश के सियासी आसमान पर यह केसरिया धुन्ध ऐसे समय में उड़ायी गयी जब उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव आसन्न है। क्या यह महज संयोग है कि जिस दिन गोरखपुर में योगी आदित्यनाथ की अगुवाई में साधु समाज दहाड़ रहा था उसी दिन लखनऊ में आर.एस.एस. के राजनीतिक मुख और मुखौटे एक बार फिर राम मन्दिर का राग ज़ोर-शोर से अलाप रहे थे। देश की चुनावी सियासत के रंग-ढंग को समझने वालों के लिए यह समझना कठिन नहीं कि यह चुनावी मौसम की केसरिया बहार भी है।

पंजाब में चुनावी दंगल की तैयारियाँ शुरू

(पेज 4 से आगे)

जेब में होता है। इस समय भी पंजाब में चार-पाँच अकाली गुट सक्रिय हैं। शिरोमणि अकाली दल (बादल) को छोड़ कर बाकी अकाली गुट लगभग निष्प्रभावी हैं। हाँ, अकाली दल (मान) का पंजाब में कुछ प्रभाव जरूर है। इस गुट के नेता सिमरनजीत सिंह मान पर अभी भी खालिस्तान बनाने का भूत सवार है। यह गुट मारे जा चुके खालिस्तानियों के 'शहीदी दिन' मनाता रहता है। वास्तव में यह गुट सिख कट्टरपंथ की नुमाइन्दगी करता है। पंजाब में बाहरी राज्यों से काम करने आये मजदूरों के विरुद्ध लोगों की नफरत भड़काने में भी यह गुट हमेशा आगे रहता है। पिछले दिनों अकाली दल (बादल) तथा अकाली दल (मान) के कार्यकर्ताओं के बीच पंजाब में कई जगह झड़पें हुईं, जिन में इन्होंने एक दूसरे की खूब पगड़ियाँ उछालीं, खूब दाढ़ियाँ उखाड़ीं। वास्तव में अकाली दल (मान) पंजाब की चुनावी राजनीति को किसी भी तरह से प्रभावित कर सकने में सर्वथा असमर्थ है। हाँ यह गुट अकाली दल (बादल) के वोट बैंक में कुछ हद तक सेंध लगाने का काम जरूर करता है।

दरअसल, अलग-अलग अकाली गुट पंजाब के ग्रामीण पूंजीपति वर्ग के हितों की नुमाइंदगी करते हैं, जिस के चलते मजदूरों (ग्रामीण तथा शहरी) से इनकी घोर दुश्मनी है।

कांग्रेस और अकालियों के अलावा पंजाब में जातिवादी राजनीति करने वाली बहुजन समाज पार्टी भी सरगर्म है। शुरू-शुरू में इस पार्टी ने जातिवादी भावनाएँ भड़काने के ज़रिए पंजाब से अपना वोट बैंक विस्तारित करने की कोशिश की थी। पर जल्दी ही लूट के माल के बँटवारे को लेकर इस पार्टी के नेता भी आपस में जूतम-पैजार पर उतर आये। अब इस पार्टी के नेता भी 'अपनी-अपनी ढपली अपना-अपना राग' गाते हैं और चुनावों में बड़ी पार्टियों के साथ लेन-देन की जुगत भिड़ाने में मशरूफ रहते हैं।

फासिस्ट भाजपा पंजाब की राजनीति में अकाली दल (बादल) के साथ गँठजोड़ के ज़रिए ही अपनी हाज़िरी लगवाती है।

अब नज़र एक पंजाब की चुनावी वामपंथी धारा पर। इस धारा की नुमाइंदगी मुख्यतया भाकपा तथा माकपा (प्रकाश कारत गुट) करती हैं। अपने दम पर पंजाब की चुनावी राजनीति को प्रभावित कर सकने में यह पार्टियाँ सर्वथा अक्षम हैं। इसलिए काफी लम्बे समय से इनका कांग्रेस के साथ प्रेम प्रसंग चल रहा है। प्रत्यक्ष परोक्ष दोनों ही तरह से यह दोनों पार्टियाँ कांग्रेस की ही सेवा में तल्लीन रहती हैं।

भाकपा-माकपा तथा अन्य संशोधनवादियों के क्लब में नयी-नयी शामिल हुई भा.क.पा. (मा.ले.) लिबरेशन अपने भूतपूर्व गुरु विनोद मिश्र के कहे मुताबिक 'वामपंथी महासंघ' बनाने की कोशिशों में लगी रहती है। मगर चुनावी राजनीति में इसकी औकात ही इतनी है कि बड़ी पूँजीवादी पार्टियाँ तो दूर, 'चुनावी वामपंथी' भी इसे मुँह नहीं लगाते।

पंजाब की चुनावी राजनीति मुख्यतया कांग्रेस तथा अकाली दल (बादल) के इर्द-गिर्द ही घूमती है। बाकी छोटी-मोटी पार्टियों को इन्हीं में से किसी न किसी की पूँछ पकड़नी पड़ती है।

यही हाल पंजाब की मेहनतकश जनता का है। कोई सही क्रान्तिकारी विकल्प न होने के चलते उसे इन्हीं दो पार्टियों में से किसी एक को चुनना होता है, जो पाँच साल तक जम कर डण्डा चलाती है। इस बार भी चुनावी दंगल में उतरने वाली पार्टियों में से भले कोई भी पार्टी चण्डीगढ़ के तख़्त पर विराजमान हो, जनता का कोई भला नहीं होने जा रहा, बल्कि आने वाले दिनों में मेहनतकश जनता पर और अधिक कहर बरपा होगा। मेहनतकशों को मिलने वाली मामूली सुविधाओं में और अधिक कटौती होगी। वैश्वीकरण-निजीकरण-उदारीकरण का रथ और बेरहमी से मेहनतकशों को रौंदेगा। मजदूरों तथा अन्य मेहनतकश लोगों को सड़कों पर आना होगा। चुनावी राजनीति से अलग अपने क्रान्तिकारी संगठन खड़े करने होंगे तथा अपनी संगठित ताकत के बल पर अपने हक हासिल करने होंगे।

सुखविन्दर

आपस की बात

आज सुबह ही डाक में 'बिगुल' का अंक गलत पते पर सही हाथों में लिया। डाकिये की इस गलती पर उसे धन्यवाद है।

हम यहाँ गुना में मजदूरों में काम करते हैं। हम सीपीआई से मोहभंग हुए लोग हैं। सदस्य तो बने हुए हैं पर सूझ नहीं पड़ता कि क्या करें? सदस्यता छोड़ने से गुना जैसे सामन्ती समाज में संघर्ष का झण्डा थामे अपेक्षाकृत संगठन बेहतर के बारे में गलत संदेश जाता है। कृपया मार्गदर्शन करें।

अंक मिलता रहे तो अच्छा लगेगा। यथासम्भव यथासमय अपना आर्थिक सहयोग भिजवा देंगे। हाँ, जल्दी ही 'बिगुल आन्दोलन के नाम सौ रुपए का मनीआर्डर करने का वचन देते हैं।

पुष्पराग
गुना, मध्यप्रदेश

आज कल में जहाँ कार्यरत हूँ, यानी ऊधमसिंहनगर इसके आस-पास में बहुत सी तेजी से उद्योगों का विस्तार हो रहा है। साथ ही आवासीय कालोनियाँ भी विकसित हो रही हैं। इससे समाज जनजीवन बहुत ही प्रभावित हो रहा है जबकि बिल्डरों और नवधनाढ्यों के पौ-बारह हो रहे हैं। आम आदमी की मुश्किलें पहले से ज्यादा बढ़ गई हैं और अपराधों में बेतहासा बढ़ोत्तरी हो रही है जो कि इसकी आवश्यक परिणति ही है। इस तरह मेरी यह इच्छा है कि हमारे जागरूक 'बिगुल' के माध्यम से इस पर कुछ सार्थक लेखन हो और उसे यहाँ के जागरूक लोगों के बीच प्रचारित-प्रसारित किया जाए।

आपका साथी,
अविनाश कुमार
रुद्रपुर, ऊधमसिंहनगर

'बिगुल' लगातार मिलता रहा है। कहानियों के बारे में आपका प्रयास आपकी इच्छा शक्ति को दर्शाता है। दरअसल जिनकी कहानियाँ हैं, वे कहें या लिखें तो बहुत अच्छा, पर क्या ऐसा ही है। जनार्दन को पढ़ना मुझे संवेदनशील बना गया लोधा, चइया की कहानी देश के सत्तर फीसदी का क्रूर यथार्थ है। पर इस क्रूर यथार्थ को प्रकृति का नियम तो नहीं माना जा सकता ऐसी स्थिति में हुए क्रूरता के खिलाफ क्या वैचारिक हस्तक्षेप आवश्यक नहीं, वह भी क्यों और कैसे के रूप में, जर्नादन के साथ, तथा उन्हीं की तरह बहुत से ऐसे हैं जो इस प्रकार से सक्रिय हैं वे नामी भी तथा अनामी भी हो सकते हैं। उन्हें प्रकाश में लाना, बार-बार लाना बुरा नहीं होगा।

रामनाथ शिवेंद्र
राबर्ट्ससंगज, सोनभद्र

बिगुल को सहयोग राशि भेजने वाले साथी ध्यान रखें

- **मनीआर्डर भेज रहे हैं तो उसके साथ अपना नाम, पता उस हिस्से में भी लिखें जो संदेश के लिए निर्धारित होता है। एक पोस्टकार्ड पर भी अपना पता लिख कर भेज दें। कई बार सैटेलाइट मनीआर्डर में संदेश वाला हिस्सा खाली होता है।**
- **कृपया सहयोग राशि भेजकर अपनी सदस्यता का नवीनीकरण करा लें और बिगुल को जारी रखने में मदद करें।**

सम्पादक

बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और जिम्मेदारियाँ

1. 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर (कम्युनिस्टों) और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय : **69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006**
सम्पादकीय उपकार्यालय : **जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ**
दिल्ली सम्पर्क : **बी-108, मुकुन्द विहार, करावल नगर, दिल्ली-94 फ़ोन : 011-65976788**
ईमेल : bigul@rediffmail.com

मूल्य : एक प्रति रु. 3.00 वार्षिक रु. 40.00 (डाक खर्च सहित)

बिगुल

'जनचेतना' की सभी शाखाओं पर उपलब्ध :
1. डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
2. जनचेतना स्टाल, काफ़ी हाउस बिल्डिंग, हजरतगंज, लखनऊ (शाम 5 से 8 बजे तक)
3. जाफरा बाजार, गोरखपुर-273001
4. 16/6, वाद्यम्बरी हाउसिंग स्कीम अल्लापुर, इलाहाबाद
5. जनचेतना सचल स्टाल (ठेला) चौड़ा मोड़, नोएडा (शाम 5 से 8)

मेहनतकश साथियों के लिए ज़रूरी कुछ

कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढांचा –लेनिन	5/-	क्यों माओवाद?	10/-
मकड़ा और मक्खी –विल्हेल्म लीब्कनेख्त	3/-	मई दिवस का इतिहास	5/-
ट्रेड यूनियन काम के जनवादी तरीके –सर्जी रोस्तोवस्की	3/-	अक्टूबर क्रान्ति की मशाल	12/-
अनवश्वर है सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएँ	10/-	पेरिस कम्यून की अमर कहानी	10/-
समाजवाद की समस्याएँ, पूँजीवादी पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति	12/-	पार्टी कार्य के बारे में	15/-
		जनता के बीच पार्टी का काम	30/-

बिगुल विक्रेता साथी से माँगें या इस पते पर 17/- रजिस्ट्री शुल्क जोड़कर मनीआर्डर भेजें : **जनचेतना, डी-68, निराला नगर, लखनऊ**

कांग्रेस का मुस्लिम प्रेम एक छलावा है!

देश में मुस्लिमों की वास्तविक स्थिति का बयान करने वाली सच्चर समिति की रिपोर्ट के संसद में पेश होते ही सारी चुनावबाज पार्टियों को एक मुद्दा मिल गया है गोया वे मुसलमानों की इस स्थिति से अभी तक अनजान हों। कोई इस पर साम्प्रदायिकता की रोटी सेंकना चाहता है तो कोई अपने को मुसलमानों का सबसे बड़ा हितैषी साबित करने की कोशिश में लगा हुआ है। अब कोई इनसे पूछे कि आख़िर ये अब तक कहाँ थे और यह चिल्ल-पों विधानसभा चुनाव के ऐन पहले ही क्यों?

सच्चर कमेटी की रिपोर्ट कोई नया तथ्य नहीं प्रस्तुत कर रही है। मुसलमानों की दोयम दर्जे की स्थिति एक नंगी सच्चाई है और यह भी सच है कि इससे एक पार्थक्य पैदा होता है।

यदि वास्तविक स्थिति पर नज़र डाली जाये तो इस देश की कुल आबादी के अनुपात में 13.4 फीसदी मुसलमान हैं। इन मुसलमानों की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक स्थिति बद से बदतर है। इनके बच्चों की मृत्यु का प्रतिशत सबसे ज़्यादा है, बाल मज़दूरों का प्रतिशत सबसे ज़्यादा है। देश के बुनकर उद्योग, चूड़ी उद्योग, पटाखों की फैक्ट्री आदि जैसे उद्योगों में मुस्लिम आबादी से आये बच्चों की संख्या सबसे ज़्यादा है। इसके विपरीत शिक्षा तथा नौकरियों में इनका प्रतिशत बहुत ही कम है। पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश तथा बिहार जैसे मुसलमानों की अच्छी-ख़ासी आबादी वाले राज्यों में ही मुसलमानों की हालत सबसे ज्यादा खराब है। जबकि इन राज्यों में वाम दल तथा तथाकथित सेक्यूलर पार्टियाँ कई बार सत्ता में रही हैं और अपने मुस्लिम प्रेम का जब-तब ढिंढोरा पीटती रही हैं।

दूसरी तरफ, सांप्रदायिक दलों के मुस्लिम तुष्टिकरण के आरोपों के बावजूद सच्चाई यह है कि मुसलमानों की ाारी आबादी गरीबी, अशिक्षा और अपमानजनक स्थितियों में जी रही है। न्यायमूर्ति आनंद नारायण मुल्ला कमीशन की रिपोर्ट में साफ कहा गया था कि आजादी के बाद से अब तक हुए दंगों में मुसलमानों के जानमाल का नुकसान सबसे ज्यादा हुआ है। आई.पी.एस. अधिकारी विभूति नारायण राय की पुस्तक में इस तथ्य का हवाला दिया गया है कि दंगों में पुलिस-प्रशासन बाकायदा एक हिन्दू पक्ष के रूप में काम करते हैं।

सर्वविदित है कि मुस्लिम आबादी को वोट बैंक के रूप में ही देखा जाता है और धर्म को सिक्के के रूप में वोट बैंक की राजनीति में इस्तेमाल किया जाता रहा है। मुस्लिम आबादी के सामाजिक-आर्थिक पिछड़ेपन को दूर करने की दिशा में किसी भी पार्टी ने अभी तक कोई काम नहीं किया है। इधर धार्मिक नेता भी अपना उल्लू सीधा करने के लिए इन्हें पिछड़ेपन में जकड़े रहना चाहते हैं, ये आम मुस्लिम आबादी की दुर्दशा की बात नहीं करते हैं। बल्कि इसके विपरीत धार्मिक कट्टरपंथ को बनाये रखने का काम मुस्लिम कट्टरपंथ बखूबी करता है। इस मुस्लिम कट्टरपंथ के खेल का फ़ायदा भी हिन्दू धार्मिक कट्टरपंथ ही उठाता है।

मुस्लिम हितों की नुमाइन्दगी का दम भरने का दावा करने वाले दो धार्मिक संयुक्त मोर्चे भी इधर बन गये हैं, वी.पी. सिंह का जनमोर्चा भी इसमें पीछे नहीं है तो कांग्रेस को भी उनकी याद आने लगी है और उसका मुस्लिम प्रेम फिर से जाग गया है। आनन-फानन में सच्चर कमेटी की रिपोर्ट पेश करके उसने अपने को मुसलमानों का हितैषी साबित करने की एक बार फिर कोशिश की है। यह कांग्रेस का मुस्लिम प्रेम है या वोट बैंक की राजनीति, इसको जानने के लिए एक बार पीछे लौटना और देखना ज़रूरी है कि वोट बैंक की इस राजनीति में इसने क्या-क्या गुल खिलाये हैं कौन नहीं जानता कि 1980 में अकाली दल के चुनावी आधार को खिसकाने की रणनीति के तहत इसने सिख कट्टरवाद को सचेतन रूप से बढ़ाया था। भिण्डरावाले पहले कांग्रेस का कार्यकर्ता था। यह अलग बात है कि आगे चलकर कांग्रेस द्वारा खेला गया यह खेल उसके अपने ही नियन्त्रण से बाहर चला गया। ठीक इसी समय वह दूसरी तरफ़ हिन्दी भाषी क्षेत्र में हिन्दू 'कार्ड' खेल रही थी। कांग्रेस जम्मू में भाजपा का वोट बैंक खिसकाने के लिए हिन्दू कार्ड खेलती है तो कश्मीर घाटी में पाकिस्तान विरोधी तेवर इस्तेमाल करती है। अपनी इसी चुनावी रणनीति के तरह राजीव गाँधी द्वारा 1984 में बाबरी मस्जिद परिसर का ताला खुलता है, 6 दिसम्बर 1992 की घटना में नरसिंह राव की सरकार की परोक्ष भूमिका सर्वविदित ही है। अयोध्या मुद्दे को भड़काने और धार्मिक कट्टरपंथ को पनपाने में कांग्रेस ने जो घृणित भूमिका निभाई है यह किसी से छिपी नहीं है, अब चुनाव के ऐन पहले अचानक जाग उठे उसके इस मुस्लिम प्रेम के पीछे की मंशा को आसानी से समझा जा सकता है।

उल्लेखनीय है कि आज़ादी के बाद से ही कांग्रेस का मुस्लिम आबादी में आधार था। 1980 के दशक में हिन्दू वोट बैंक जीतने की रणनीति के तहत उपरोक्त कार्रवाइयों से मुस्लिम आबादी से कांग्रेस का आधार खिसक गया।

अयोध्या की त्रासदी का जो कलंक कांग्रेस के माथे लगा हुआ है उसे धोने के लिए और मुसलमानों के खोये हुए आधार को पुनः हासिल करने के लिए सच्चर कमेटी के माध्यम से मुस्लिम प्रेम का जो ड्रामा रचा गया है उस ड्रामे को खेलने की अनुकूल स्थितियाँ भी कांग्रेस को सामने दिखाई दे रही हैं। तमाम प्रयासों के बाद भी धार्मिक जुनून की लहर भाजपा उठा नहीं पा रही है, इससे कांग्रेस की मुसलमानों में अपने खोये हुए आधार को पुनः पा लेने की उम्मीदें बढ़ी हैं, ऐसे में 1992 की स्मृतियों को यदि जनता भुला सके तो मुस्लिम प्रेम की इस नैया पर सवार होकर कांग्रेस चुनावी वैतरणी को पार कर लेने का मंसूबा पाले हुए है। और उसका मुस्लिम प्रेम इस समय पूरे उफान पर है। उधर इस वोटबैंक को अपनी ओर खींचने की कवायद में वामदल से लेकर मुलायम सिंह, वी.पी.सिंह व मायावती सहित सभी पार्टियाँ जी-जान से लग गयी हैं और भाजपा के पास तो इस मुद्दे पर अपना पुराना राग छेड़ने के सिवा कोई रास्ता बचा है नहीं। ऐसे में चुनावी मदारियों के इन तमाशों की असलियत को समझने और उसका पर्दाफाश करने की जरूरत आज सबसे ज्यादा है। सोचना यह है कि आखिर कब तक चुनावी राजनीति के ये शैतान जनता को बेवकूफ़ बनाकर अपना उल्लू सीधा करते रहेंगे।

बागेश्वरी

सच्चर कमेटी की रिपोर्ट :
मुस्लिम समुदाय की हालत की सच्चाइयाँ और सुधार के नुस्खों का भ्रम

सच्चर कमेटी की रिपोर्ट मुस्लिम आबादी की जिस दोयम दर्जे की स्थिति को सामने लाती है उसका अनुमान चन्द आँकड़ों से लगाया जा सकता है।

देश में मुसलमानों की आबादी 13.4 प्रतिशत है लेकिन सरकारी नौकरियों में उनका प्रतिनिधित्व सिर्फ 4.9 प्रतिशत है, इसमें भी ज्यादातर निचले पदों पर हैं। उच्च प्रशासनिक सेवाओं यानी आईएएस, आईएफएस और आईपीएस में मुसलमानों की भागीदारी सिर्फ 3.2 प्रतिशत है।

रेलवे में केवल 4.5 प्रतिशत मुसलमान कर्मचारी हैं जिनमें 98.7 प्रतिशत निचले पदों पर हैं। पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश और असम जहाँ मुस्लिम आबादी क्रमशः 25.2 प्रतिशत, 18.5 प्रतिशत और 30.9 प्रतिशत है, वहाँ सरकारी नौकरियों में मुसलमानों की भागीदारी क्रमशः सिर्फ 4.7 प्रतिशत, 7.5 प्रतिशत और 10.9 प्रतिशत है।

उनमें साक्षरता की दर भी राष्ट्रीय औसत से कम है। शहरी इलाकों में स्कूल जाने वाले मुस्लिम बच्चों का प्रतिशत दलित और अनुसूचित जनजाति के बच्चों से भी कम है। हिन्दू फासिस्टों के प्रचार के विपरीत सच्चाई यह है कि केवल 3 से 4 प्रतिशत मुस्लिम बच्चे ही मदरसों में पढ़ने जाते हैं।

ये आँकड़े सच्चाई की झलक मात्र देते हैं। आम मुसलमान इस देश में किस अपमान और डर के साये में जीता है इसे समझने के लिए ज़रा किसी मुसलमान से पूछिए कि उसके लिए शहर में एक कोठरी या मकान पर किराए पर लेना कितना कठिन है। या हर बमकाण्ड के बाद हर मुसलमान को आतंकवादी मान लेने वाली नजरों और गरीब मुसलमानों की बस्तियों में आधी रात को पड़ने वाले पुलिसिया छापों को याद कीजिए।

सच्चर कमेटी ने इस हालत में सुधार के लिए वही पुराना आरक्षण का नुस्खा सुझाया है। पिछले 60 साल में आरक्षण के इस झुनझुने से दलितों-आदिवासियों की हालत कितनी सुधर गयी यह सबके सामने है। मुस्लिम समुदाय को समझना होगा कि दोयम दर्जे की इस हालत से उनकी मुक्ति ऐसी किसी पैबन्दसाजी से नहीं बल्कि एक नये समाज के लिए व्यापक जनता के क्रान्तिकारी संघर्ष से जुड़कर ही हो सकती है।

पूर्वी उत्तर प्रदेश के आसमान में केसरिया धुन्ध के बीच इतिहास के रथचक्र को पीछे घुमाने की कवायद

बिगुल संवाददाता

गोरखपुर। पूर्वी उत्तर प्रदेश के आसमान में तीन दिनों तक (22-24 दिसम्बर) इतने केसरिया रंग उड़ाये गये कि वे धुन्ध बनकर छाये रहे। अवसर था विश्व हिन्दू महासंघ (विश्व भर के हिन्दू संगठनों का छाता संगठन) के महासम्मेलन और विराट हिन्दू संगम का। स्थानीय गोरखनाथ पीठ के उत्तराधिकारी गोरखपुर सदर सांसद योगी आदित्यनाथ के संयोजकत्व में कई देशों से साधु-सन्त-धर्माचार्य और हिन्दुत्व के झण्डाबरदार पधारे हुए थे। गोरखनाथ मन्दिर प्रांगण में दो दिवसीय सम्मेलन के दौरान प्रतिनिधियों ने जो 'गहन विचार-विमर्श' किया और तीसरे दिन महाराणा प्रताप इण्टर कालेज प्रांगण में 'हिन्दुत्व के हितों के रक्षार्थ' जिस भावी 'महाभारत' के लिए बिगुल फूँका उसका मूल स्वर यही था कि हिन्दुओं के हितों की रक्षा तभी हो सकती है जब इतिहास के रथ के चक्के को पीछे घुमा दिया जायेगा।

इस तीन दिवसीय हिन्दू महाआयोजन के दौरान दुनिया के तथाकथित एकमात्र हिन्दू राष्ट्र नेपाल में राजशाही के ख़ात्मे पर जिस तरह विलाप किया गया उसी से यह स्पष्ट हो जाना चाहिये कि 'हिन्दुत्व की रक्षार्थ' जुटे इस सन्त समागम के पास देश की जनता को देने के लिए कौन-सी जीवनदृष्टि या आर्थिक-राजनीतिक- सामाजिक व्यवस्था है। नेपाल में राजशाही के ख़ात्मे के लिए 'धर्मान्तरित इसाइयों' और (माओवादी नेता प्रचण्ड-बाबूराम भट्टराई के लिए इसी विशेषण का प्रयोग किया गया) आई.एस.आई. की हिन्दुत्व विरोधी साजिश को ज़िम्मेदार ठहराया गया। यह नेपाली जनता की उन महान कुर्बानियों का अपमान है जो उसने नेपाल में लोकशाही की स्थापना के लिए संघर्षों में दी हैं। दुनिया भर की जनता ने सामन्ती निरंकुश राजशाहियों को इतिहास की जिस कूड़ेदानी में फेंक दिया है उसमें से छाँट-बीनकर उसे फिर से स्थापित करने की कोशिशें मानवता को मध्ययुगीन अँधेरे में पहुँचा देने की कोशिशों के अलावा और क्या हो सकती हैं।

तीन दिनों तक चले इस हिन्दू महासंगम में नेपाल में राजशाही के खात्मे पर विलाप के अवाला दुनिया भर में हिन्दुओं पर हो रहे कथित अत्याचारों, 'हिन्दुओं के मानबिन्दुओं' (यानी मन्दिरों) पर हुए आतंकी हमलों का बदला लेने की हुंकारें गूँजती रहीं और भारतीय संशोधनवादी कम्युनिस्ट के कुकर्मों के हवाले दे-देकर कम्युनिज़्म की विचारधारा को पानी पी-पीकर कोसा-सरापा जाता रहा। सम्मेलन में नेपाल को फिर से हिन्दू राष्ट्र के साथ ही समूचे दक्षिण एशिया में हिन्दुत्व का ध्वज फहराने के प्रस्ताव पारित किये गये और अन्तिम दिन 'विराट हिन्दू संगम' में इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए एक नये 'महाभारत' का शंखनाद किया गया।

मतलब यह कि इस तीन दिनी महाआयोजन में आक्रामक हिन्दुत्व के आर.एस.एस. के चिर-परिचित एजेण्डे को आगे बढ़ाने के लिए हुंकार भरा गया। आर.एस.एस. के 'हिन्दू राष्ट्र' और इस समागम में जुटे साधु-सन्तों के 'हिन्दू राष्ट्र' की अवधारणाएँ बिल्कुल एक हैं। 23 दिसम्बर की आम सभा में एक वक्ता ने अत्याधिक जोश में आकर 'हिन्दू राष्ट्र' की सच्चाई इन शब्दों में प्रकट की कि अगर योगी आदित्यनाथ को भारत का प्रधानमंत्री बना दिया जाये तो मुसलमानों और अन्य सभी अल्पसंख्यकों को मताधिकार से वंचित कर दिया जायेगा। आर.एस.एस. के विचारक गुरु **गोलवलकर** की पुस्तक **'वी एण्ड अवर नेशनहुड डिफ़ाइण्ड'** में भी हिन्दू राष्ट्र की अवधारणा इन्हीं शब्दों में व्यक्त की गयी है। गोलवलकर ने लिखा है : ". *..जाति और संस्कृति की प्रशंसा के अलावा मन में कोई और विचार न लाना होगा, अर्थात हिन्दू राष्ट्रीय बन जाना होगा* और हिन्दू जाति में मिलकर अपने स्वतन्त्र अस्तित्व को गँवा देना होगा, या इस देश में पूरी तरह से 'हिन्दू राष्ट्र' की गुलामी करते हुए, बिना कोई माँग किये, बिना किसी प्रकार का विशेषाधिकार माँगे, विशेष व्यवहार की कामना करने की तो उम्मीद ही न करे : यहाँ तक कि बिना नागरिकता के अधिकार के रहना होगा। उनके लिए इसके अलावा और कोई रास्ता नहीं छोड़ना चाहिए। हम एक प्राचीन राष्ट्र हैं। हमें उन विदेशी जातियों से जो हमारे देश में रह रही हैं उसी प्रकार निपटना चाहिए जैसे कि प्राचीन राष्ट्र विदेशी नस्लों से निपटा करते हैं।"

यह है हिन्दू राष्ट्र की मूल संकल्पना जिसे साकार करने का संकल्प इस महाआयोजन में लिया गया। योगी आदित्यनाथ ने सभा में दहाड़ते हुए यहाँ तक कहा कि इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए 'हिन्दुओं' को शस्त्र उठाने से भी नहीं हिचकना चाहिए। यानी पिछले दिनों हिन्दू राष्ट्र और हिन्दू स्वाभिमान के पुनरुत्थान के लिए गुजरात में जिस तरह मुसलमानों का राज्य प्रायोजित नरसंहार किया गया भविष्य में उसे और दुहराये जाने का संकल्प दुहराया गया।

सम्मेलन में इस पर भी काफ़ी चिन्ता और गुस्सा प्रकट किया गया कि भारत सरकार नेपाल में हिन्दू राष्ट्र को बचाने के लिए मदद नहीं की। हालाँकि यह तथ्यतः गलत भी है। नेपाल की राजशाही को बचाने के लिए अमेरिकी-ब्रिटेन साम्राज्यवादियों के साथ ही भारत सरकार से जितना बन पड़ा उतनी मदद देने में कोई कोर-कसर बाकी नहीं रखी थी लेकिन नेपाली जनता की इच्छाओं के आगे उनकी दाल नहीं गली। नेपाल को भारत सरकार ने भारी परिमाण में पैसे से मदद के अलावा फ़ौजी और खुफ़िया मदद भी की लेकिन जब उसने देखा कि नरेश ज्ञानेन्द्र और समूचे राजपरिवार के प्रति समूची नेपाली जनता भीषण आक्रोश से भरी हुई है और उसकी जनवादी आकांक्षाओं को कुचला नहीं जा सकता तो उसने माओवादियों और सात दलों के गठबन्धन के एजेण्डे को आगे बढ़ाने में मदद करने में ही भलाई समझी।

(पेज 2 पर जारी)

चिली के बर्बर तानाशाह जनरल पिनोशे की मौत

लेकिन पूँजीवादी नरपिशाचों की यह बिरादरी अभी ज़िन्दा है!

विशेष संवाददाता

दिल्ली। पिछले 11 दिसम्बर को दक्षिण अमेरिकी देश चीली का बर्बर तानाशाह जनरल ऑगस्टो पिनोशे मर गया। उसकी मौत से दुनिया के साम्राज्यवादी-पूँजीवादी हुक्मरान ने राहत की साँस ली। कारण कि उसके ज़िन्दा रहते अक्सर ही उसके खूनी कारनामों की चर्चाएँ उठ पड़ती थीं जो पूँजी की विश्वव्यापी मानवद्रोही सत्ता को आइना दिखाने जैसा होता था। उसकी मौत ने साम्राज्यवादी-पूँजीवादी न्याय के उस पाखण्ड से भी छुटकारा पाने का रास्ता साफ़ कर दिया है जो पिछले छह वर्षों से चीली में उसके मानवता विरोधी अपराधों के खिलाफ़ मुक़दमा चलाने के नाम पर हो रहा था। अब समूची पूँजीवादी बिरादरी पिनोशे को जल्द से जल्द इस अन्दाज़ में भुला देना चाहेगी गोया वह किसी अनचाहे गर्भ से पैदा होने वाला कोई शैतानी औलाद रही हो लेकिन दुनिया के मेहनतकश अवाम को पल भर के लिए भी न भूलना होगा कि पूँजीवादी-साम्राज्यवादी कोख ऐसी औलादों को हमेशा ही पैदा करती रहती है।

नयी पीढ़ी के मेहनतकशों और उनके हरावलों को पिनोशे नामक इस नरपिशाच के खूनी कारनामों को इसलिए याद रखना चाहिए जिससे कि पूँजीवादी-साम्राज्यवादी व्यवस्था के खिलाफ़ उनके दिलों में नफ़रत की प्रचण्ड ज्वाला धधकती रहे और मानवता की सम्पूर्ण मुक्ति की राह पल भर के लिए भी आँखों से ओझल न होने पाये। पिनोशे वह शख़्स था जिसने 11 सितम्बर 1973 को चीली में एक खूनी फौजी तख़्तापलट करके गद्दी सँभालने के बाद जनता पर जो जुल्म ढाये उनकी याद भी सिहरन पैदा करती है। उसने चार हज़ार से भी अधिक लोगों का कत्लेआम करवाया, हज़ारों लोग या तो लापता हो गये या उन्हें देश छोड़ने को मजबूर कर दिया गया। महिलाओं के सामूहिक वस्त्रहरण से लेकर सामूहिक बलात्कार करने और सामूहिक यातनाएँ देने के ऐसे-ऐसे वीभत्स तरीके ईजाद किये जिनकी तुलना केवल नाज़ी यातना शिविरों से ही की जा सकती है। लगभग पच्चीस वर्षों तक पिनोशे के शासन के अधीन चीली की पहचान आम जनता के लिए कत्लगाह, जेलखानों और गोलियों की बौछारों वाले देश के रूप में ही बनी रही।

हमें बुर्जुआ इतिहासकारों की तर्ज पर पिनोशे के खूनी कारनामों को उसके विकृत दिमाग़ की उपज नहीं मानना चाहिए। पिनोशे चीली की समस्त प्राकृतिक एवं सामाजिक सम्पदा पर कब्ज़ा जमाने की वहशी चाहत रखने वाले समाज के मुट्ठी भर ऊपरी वर्गों और अमेरिकी साम्राज्यवादी डाकुओं का दुलारा नुमाइन्दा था। धनपशुओं की इस जमात को चीले में लोकप्रिय जननेता सल्वादोर अलेन्दे द्वारा 1971 में चुनकर सरकार में आना फूटी आँखों नहीं सुहाया था। अलेन्दे को सत्ता में आने से रोकने के लिए इस जमात ने अपनी एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा दिया लेकिन अलेन्दे को हासिल प्रचण्ड जनसमर्थन के सामने उनके मंसूबे धरे के धरे रह गये। सत्ता सम्हालने के बाद जब अलेन्दे ने अमेरिकी बहुराष्ट्रीय खदानों, बैंको और अन्य महत्वपूर्ण उद्योगों के राष्ट्रीकरण, बड़ी पूँजीवादी ज़मींदारों को सामुदायिक खेती में बदलने और कीमतों पर नियन्त्रण कायम कराने की नीतियों की घोषणा की तो चीले के वे धनपशु और उनके अमेरिकी सरपरस्त बदहवास हो उठे। उन्होंने अलेन्दे की सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए आर्थिक तोड़-फोड़, सामाजिक अफ़रातफ़री पैदा करने के साथ ही अलेन्दे की हत्या करने की साजिशों को रचना शुरू कर दिया। अमेरिकी खुफिया एजेंसी सी.आई.ए. ने अपनी कुख्यात सरगर्मियाँ तेज़ कर दीं। अमेरिकी साम्राज्यवादियों को पिनोशे के रूप में एक वफ़ादार कुत्ता भी मिल गया जो उस समय चीले का सेनाध्यक्ष था। आख़िरकार यह जमात 11 सितम्बर 1973 को अपने मंसूबों में कामयाब हो गयी जब पिनोशे की अगुवाई में सीधे राष्ट्रपति भवन 'ला मोनेदा' पर फ़ौजी धावा बोल दिया गया जिसमें अलेन्दे अपने सैकड़ों सहयोगियों के साथ लड़ते-लड़ते मारे गये।

इस खूनी तख़्तापलट के बाद सत्ता सम्हालते ही जहाँ एक ओर पिनोशे ने भीषण दमनचक्र की शुरुआत की वहीं उसने चीले के पूँजीपतियों, पूँजीवादी भूस्वामियों और अमेरिकी बहुराष्ट्रीय निगमों को मालामाल करने वाली आर्थिक नीतियाँ लागू करनी शुरू कीं। नतीजतन आम मेहनतकश जनता की ज़िन्दगी नर्क बन गयी। उसने सार्वजनिक स्वास्थ्य और शिक्षा की व्यवस्था को तहस-नहस कर दिया और कीमतों पर से नियन्त्रण हटाकर बाज़ार की शक्तियों के खुले खेल के लिए मैदान साफ़ कर दिया। इन नीतियों के विरोध में आवाज़ उठाने वालों के लिए लाठी-गोली-जेल के सिवा और कुछ नहीं था।

1973 से 1989 तक चीले में पिनोशे की खुली खूनी तानाशाही लागू रही। 1989 में एक जनमत संग्रह के बाद एक तथाकथित नागरिक सरकार अस्तित्व में आयी जिसकी बागडोर भी अन्ततः अमेरिकी साम्राज्यवादियों के ही हाथों में थी। सत्ता छोड़ने से पहले पिनोशे ने कानून बनाकर अपने ऊपर किसी अपराध के खिलाफ़ मुक़दमा चलाने से संरक्षित कर लिया। इस कानून के तहत 1998 तक वह संरक्षित रहा और बाद के दिनों में वह बीमारी का इलाज कराने के नाम पर ब्रिटेन में वक़्त गुज़ारता रहा। विदेशी बैंकों में जमा की गयी लूट की सम्पत्ति के चलते उसके ऐशोआराम में वहाँ भी किसी किस्म की कोई कमी हो नहीं सकती थी। देश के भीतर राजनीतिक फिज़ा में आये बदलाव के बाद, जब चीले के नये पूँजीवादी शासकों के ऊपर जनभावनाओं का दबाव बढ़ा तो वर्ष 2000 में पिनोशे ब्रिटेन से वापस चीले आया और फिर उस पर मुक़दमे का पाखण्ड शुरू हुआ। अगर पिनोशे बीमारी और बुढ़ापे के नाते अपनी स्वाभाविक मौत नहीं मरता तो हो सकता था कि विशेष अदालत उसे कोई सज़ा सुना देती लेकिन इससे उस व्यवस्था की सेहत पर कोई फ़र्क नहीं पड़ता जो पिनोशे जैसे जल्लाद को फाँसी का फ़न्दा और तख़्ता मुहैय्या कराती है।

मानवता को शर्मसार करने वाले पिनोशे के खूनी कारनामों को याद करते हुए हमें चीले के इस दौर के घटनाक्रमों के रक्तरंजित सबकों को भी कभी न भूलना होगा। सल्वादोर अलेन्दे की जनपक्षधरता और शोषित-उत्पीड़ित जनों के प्रति उनके हृदय के असीम प्यार को भरपूर सम्मान देते हुए हमें यह न भूलना होगा कि राज्य और क्रान्ति के सम्बन्ध में मज़दूर वर्ग के महान शिक्षकों की मूल्यवान शिक्षाओं को वह आत्मसात नहीं कर सके थे और पूँजीवादी जनवाद के बारे में वह निम्न बुर्जुआ विभ्रम के शिकार थे। यह उनका विभ्रम ही था कि पूँजीवादी संविधान और चुनाव की प्रक्रिया के ज़रिए सत्ता में पहुँचने के बाद उन्होंने यह सोचा था कि 'राज्य की बनी-बनायी मशीनरी पर सिर्फ़ कब्ज़ा करके ही' उसे मेहनतकश अवाम के उद्देश्यों के लिए उपयोग में लाया जा सकता है। सौ साल पहले ही, 1871 के पेरिस कम्यून के दौरान ही अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर वर्ग को यह खून सना सबक मिल चुका था कि पूँजीवादी राज्य मशीनरी को ध्वस्त कर एक नयी राज्य मशीनरी (नौकरशाही और सशस्त्र बलों का राज्य संगठन) का निर्माण करके ही मज़दूर वर्ग उत्पादन के साधनों, उत्पादन के वितरण और पूरे समाज के ढाँचे पर अपना नियन्त्रण कायम कर सकता है और समाजवाद के लम्बे संक्रमणकाल से गुज़रकर कम्युनिज़्म की मंजिल तक पहुँच सकता है। इस पूरे दौरान न केवल राजनीतिक कार्रवाइयों के लिए क्रान्तिकारी पार्टी को मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकश जनता की सक्रिय पहलक़दमी को निरन्तर सचेत प्रयासों के ज़रिए जगाना होगा बल्कि उसे फ़ौजी मामलों में भी शिक्षित-प्रशिक्षित करना होगा जिससे वह क्रान्तिविरोधी शक्तियों के हमलों का मुकाबला करते हुए अपने राज्य की हिफ़ाज़त कर सके। अलेन्दे की सत्ता का आधार शुरू से ही कमज़ोर था क्योंकि वह क्रान्तिकारी संघर्षों की लम्बी प्रक्रिया के दौरान पूँजीवादी सत्ता को क्रान्ति के जरिए उखाड़ फेंकने के बाद सत्तासीन नहीं हुए थे बल्कि पूँजीवादी चुनावी प्रक्रिया के तहत ही वहाँ तक पहुँचे थे। इस कारण आम जनता की सक्रिय पहलक़दमी उस हद तक जागृत और

(पेज 9 पर जारी)

पंजाब में चुनावी दंगल की तैयारियाँ शुरू : मेहनतकश जनता को इस नौटंकी से अलग क्रान्तिकारी विकल्प खड़ा करने के बारे में सोचना होगा!

पंजाब विधान सभा चुनावों में हालाँकि अभी लगभग 2 महीने का समय बाकी है, मगर चुनावी पार्टियों ने अभी से चुनावी दंगल में उतरने की तैयारियाँ शुरू कर दी हैं। आगामी विधान सभा चुनावों को लेकर अलग-अलग चुनावी पार्टियों में अभी से जोड़-तोड़ गँठजोड़ का सिलसिला शुरू हो गया है। विधायक बनने की इच्छा रखने वालों ने चुनावी धन्धे में 'निवेश' करने के लिए अभी से नोटों का जुगाड़ भिड़ाना शुरू कर दिया है। कुछ वर्ष पहले एक राष्ट्रीय अख़बार द्वारा कराये गये एक सर्वेक्षण में यह बात उभर कर सामने आई भी कि चुनावी राजनीति इस देश में सबसे अधिक मुनाफे वाला धन्धा बन चुकी है, यहाँ पर विधायक तथा सांसद बनने में किये गये 'निवेश' पर कई गुना मुनाफा होता है।

पंजाब की चुनावी राजनीति मुख्यतया दो बड़ी पूँजीवादी पार्टियों कांग्रेस तथा शिरोमणि अकाली दल (बादल) के इर्द-गिर्द ही घूमती है। इन दिनों यह दोनों पार्टियाँ प्रान्तीय तथा राष्ट्रीय अख़बारों में बड़े-बड़े इश्तिहार छपाकर एक दूसरे पर कीचड़ उछालने के नये-नये कीर्तिमान स्थापित कर रही हैं। बड़ी-बड़ी रैलियाँ कर के शक्ति प्रदर्शन में जुटी हैं तथा नये-नये लोक लुभावन नारे देकर लोगों को एक बार फिर से भरमाने, एक बार फिर उन्हें धोखा देकर आने वालें पाँच सालों के लिए लूटने तथा पीटने का लाइसेंस हासिल करने की कवायदों में जुटी हुई हैं। देशव्यापी ताने-बाने वाली कांग्रेस पार्टी भारत के पूँजीपति हुक्मरानों की सबसे भरोसेमन्द पार्टी रही है। केन्द्र की तरह पंजाब में भी काफी लम्बा समय इसी पार्टी ने राज किया है। पूरे भारत की ही तरह इसके द्वारा पंजाब के लोगों पर भी ढाये गये जुल्मों की फेहरिस्त बहुत लम्बी है, इतिहास बहुत पुराना है। सब जानते हैं कि 80 के दशक के पंजाब में खालिस्तानी आतंकवाद को पैदा करने से लेकर खालिस्तानियों को पनाह देने का काम कांग्रेस ने ही किया था। कांग्रेस द्वारा पैदा की गई आग में पंजाब के बेगुनाह लोग एक दशक तक झुलसते रहे थे। बाद में 1992 में लोगों की लाशों पर चलकर कुर्सी तक पहुँचे कांग्रेसी मुख्यमंत्री बेअंत सिंह के राज में खालिस्तानी आतंकवाद को कुचलने के नाम पर हजारों नौजवानों को झूठी पुलिस मुठभेड़ों में मरवा दिया गया था। जिन में अनेकों युवक बेगुनाह थे। बेअंत सिंह की हुकूमत के समय तो खालिस्तानी आतंकवाद की जगह सरकारी आतंकवाद ने ले ली थी तथा जुल्मो-सितम के नये-नये कीर्तिमान स्थापित किये गये थे।

पिछले पाँच सालों से पंजाब में कांग्रेस की सरकार चल रही है। 2002 में अकालियों की करतूतों से तंग आई जनता ने कांग्रेस को चण्डीगढ़ के तख़्त पर बिठाया। कैप्टन अमरिंदर सिंह मुख्यमंत्री बने। मुख्यमंत्री बनते ही उसने भ्रष्टाचार की 'जड़ उखाड़ने' का अभियान शुरू किया। 1997-2002 तक अकाली दल (बादल) की सरकार के समय अकालियों द्वारा किये गये भ्रष्टाचार के एक के बाद एक मामले खुलने लगे। जहाँ तक कि प्रकाश सिंह बादल, जो उस समय मुख्यमंत्री थे, इस 'भ्रष्टाचार मिटाओ' अभियान की चपेट में आ गये। बादल द्वारा भ्रष्टाचार के ज़रिये बनाई करोड़ों की जायदाद के ब्यौरे जब अख़बारों में छपने लगे, तो लोग दंग रह गये। जब ये नेता आपस में लड़ते हैं और एक दूसरे के इस कदर राज़ खोलते हैं तो इन नेताओं की असलियत नंगी होने से जनता का कुछ तो ज्ञानवर्धन होता ही है।

चण्डीगढ़ में सेक्रेटेरियेट के रास्ते में एक चौक है जिस का नाम मटका चौक है। सरकार तक अपनी अवाज पहुँचाने की कोशिश करने वाले लोगों केअलग-अलग समूहों के धरनाकारियों -प्रदर्शनकारियों का यहाँ से आगे जाने की इजाज़त नहीं थी। अभी हाल ही तक यह चौक पंजाब का मशहूर धरना-प्रदर्शन स्थल रहा है। अब अमरिन्दर की सरकार द्वारा मटका चौक के बिलकुल पास में बने ताज होटल के मालिकों के दबाव पर इस चौक में हर तरह के धरने-प्रदर्शन पर पाबन्दी लगा दी गई है। इस चौक से इस पार लोग आजाद थे नारे लगाने के लिए, मुक्के लहराने के लिए, उस पार (सेक्रेट्रीएट की तरफ) लाठी-गोली से लैस वर्दीधारियों का हुजूम रहता था, जनता के हर आक्रोश को खून की नदियों में डुबो देने के लिए तत्पर। अमरिन्दर सिंह के पिछले पाँच साल के शासन के दौरान जनता के अलग-अलग तबकों के साथ इतनी बदसलूकी हुई है, इस कदर मारपीट हुई कि मटका चौक को लोग झटका चौक के नाम से बुलाने लगे।

पिछले पाँच सालों में जनता की बदहाली बढ़ती ही गई है। अमीर गरीब की खाई और गहरी हुई है। पक्के रोजगार के अवसर कम हुए हैं। बेरोजगार युवकों की कतार और लम्बी हुई है। रोजगार की अनिश्चितिता और बढ़ी है। मजदूरों (ग्रामीण तथा शहरी) की लूट-खसोट, उन पर मालिकों का जुल्मो-सितम उनके जनवादी अधिकारों का हनन, छँटनी-तालाबन्दी, गरीबी-भुखमरी बदस्तूर ज़ारी है।

पंजाब कांग्रेस के मुख्य विरोधी अकालियों के कारनामे भी कांग्रेस से कोई अलग नहीं हैं। दरअसल इन दोनों में कोई फर्क ही नहीं है। फर्क है तो बस पगड़ी के रंग का। कांग्रेसी सफेद पगड़ी पहनते हैं और अकाली नीली। मगर दिल दोनों के ही काले हैं। दोनों ही अपने आकाओं (पूँजीपतियों) की सेवा में हर वक्त मुश्तैद रहते हैं। पंजाब कांग्रेस में अन्दरूनी कलह खींचतान तो हमेशा बनी रहती हैं, मगर इसे किसी बड़ी फूट का सामना नहीं करना पड़ा। हाँ, एक जगमीत सिंह बराड़ जरूर है, जो हमेशा कांग्रेसी लीडरशिप से रूठे रहते हैं, वह भी कि उन्हें रूठने के चलते ही मीडिया में कुछ पब्लिसिटी मिलती रहती है, इसके अलावा कांग्रेस से उनका और कोई मतभेद नहीं है।

अकाली हमेशा ही आपस में लड़ते रहते हैं। इनमें एकताओं और फूटों का सिलसिला हमेशा चलता रहता है। जिस समय अकाली नेता एकता कर रहे होते हैं उसी समय फूट का प्रेस नोट इनकी

(पेज 2 पर जारी)

गुज़रे दिनों की नाउम्मीदियों और आने वाले दिनों की उम्मीदों के बारे में कुछ बातें

(पेज 1 से आगे)

अभी ही उजागर हो चुकी है। 'बिगुल' के पन्नों पर इसके बारे में पहले लिखा जा चुका है। पिछले वर्ष असंगठित मज़दूरों को बुनियादी सामाजिक सुरक्षा (स्वास्थ्य, दुर्घटना, आकस्मिक मृत्यु आदि के लिए बीमा तथा वृद्धावस्था-पेंशन वगैरह) के नाम पर एक नया शगूफा उछाला गया। इसके लिए एक राष्ट्रीय आयोग बनाया गया, जिसकी सिफ़ारिशें अब सरकार के विचाराधीन हैं। सरकार इनपर कबतक विचार करेगी और इन्हें किस रूप में लागू करेगी, यह कहा नहीं जा सकता। हो सकता है कि तबतक इस सरकार का कार्यकाल ही समाप्त हो जाये। इससे भी महत्वपूर्ण सवाल यह है कि उक्त आयोग की सिफ़ारिशों के आधार पर यदि कोई क़ानून बनेगा भी, तो सरकारी एजेंसियाँ उसे किस हद तक लागू करा पायेंगी! न्यूनतम मज़दूरी के बारे में, काम की स्थितियों एवं सुरक्षा-प्रबन्धों के बारे में, ठेका-प्रथा के बारे में, काम के घण्टों के बारे में, दुर्घटना के हरजाने के बारे में जो भी श्रम क़ानून आज देश में मौजूद हैं, वे कहीं भी लागू नहीं होते और उनसे सम्बन्धित शिकायतों की कहीं भी कोई सुनवाई नहीं है इस नंगी सच्चाई को भला कौन नहीं जानता? असली बात यह है कि यह शोशा मुख्यतः नकली वामपंथियों और ट्रेड यूनियनों के धंधेबाज़ों की गिरती साख और खिसकती ज़मीन को बचाने की एक कोशिश है। आखिर मनमोहन सरकार को बैसाखी का सहारा देने वाले तथा बंगाल और केरल में अनुकूलतम शर्तों पर मुनाफ़ा कूटने के लिए देशी-विदेशी पूँजीपतियों को सादर न्यौतने वाले संसदीय वामपंथियों को इज़्जत ढाँपने के लिए कम से कम एक चिथड़ा तो चाहिए था और एक चिथड़ा चाहिए था मज़दूरों के बीच जाकर दिखाने के लिए कि देखो, हम तुम्हारे लिए यह माँगकर लाये हैं और यदि तुम हंगामा खड़ा करने के बजाय सुशील और आज्ञाकारी बने रहोगे तो इसी तरह हम माँग-माँगकर और भी टुकड़े लाते रहेंगे जिनकी पैबन्दसाज़ी करके एक दिन समाजवाद का पूरा कोट तैयार हो जायेगा। पूँजीवादी व्यवस्था को आज भी वर्ग-संघर्ष की आँच पर सुधार के छींटे मारने के लिए संशोधनवादी राजनीति की ज़रूरत है, पर आज के पूँजीवाद की प्रकृति ही ऐसी है कि समाजवादी मुखौटे की असलियत छुपी नहीं रह पाती। मज़दूर वर्ग इन संसदीय वामपंथियों को सुधारवादी- उदारवादी बुर्जुआ पार्टियों से अधिक कुछ नहीं समझता।

इस स्थिति में वर्ग संघर्ष की आँच पर सुधार के छींटे मारने और तरह-तरह के दिग्भ्रम-विभ्रम-भटकाव पैदा करने के लिए विश्व पूँजीवाद के विश्वस्त सिद्धान्तकारों ने अपने चिन्तन-चातुर्य से एन.जी.ओ. राजनीति के रूप में पूँजीवादी व्यवस्था की एक और नयी सुरक्षा पंक्ति तैयार की है। इस राजनीति के प्रमुख कार्यक्षेत्र भारत सहित तीसरी दुनिया के वे सभी अग्रणी देश हैं जहाँ श्रम शक्ति और प्राकृतिक सम्पदा को निचोड़ने की प्रचुर सम्भावनाएँ हैं, जहाँ देशी-पूँजी के विस्तार के साथ ही साम्राज्यवादी वित्तीय पूँजी भी बड़े पैमाने पर आ रही है, जहाँ तीव्र गति से समाज का पूँजीवादी रूपान्तरण और वर्गीय ध्रुवीकरण हो रहा है तथा जहाँ नई सदी की नई सर्वहारा क्रान्तियों की ज़मीन तेज़ी से पक रही है। भारत के सुदूर कोनों तक विदेशी एजेंसियों और देशी पूँजीपतियों के ट्रस्टों के अनुदानों के सहारे काम करने वाले गैर-सरकारी संगठन (एन.जी.ओ.) अनेक रूपों में सक्रिय हैं। ये एन.जी.ओ. तरह-तरह की सुधार की कार्रवाइयाँ करते हैं, जनता की पहलकदमी से स्वास्थ्य-शिक्षा आदि का तंत्र संगठित करने की आड़ लेकर सरकार को उसकी ज़िम्मेदारियों से पीछे हटने का अवसर देते हैं, जनता की विभिन्न माँगों को लेकर इस व्यवस्था के दायरे के भीतर आन्दोलन संगठित करते हुए 'सेफ़्टीवॉल्व' की भूमिका निभाते हैं, जनता के विभिन्न वर्गों के एकजुट संघर्ष की धार व्यवस्था के विरुद्ध केन्द्रित होने से रोकने के लिए अलग-अलग आन्दोलनों का साझा मंच बनाते हैं, संघर्ष के बजाय विमर्श पर, वर्ग के बजाय राष्ट्रीय, जातीय, भाषाई, क्षेत्रीय, अल्पसंख्यक समुदायगत या लैंगिक पहचान की राजनीति (अस्मितावादी राजनीति) पर बल देते हैं तथा इन अस्मिताओं की सामाजिक वर्गीय संरचना में निहित आधारों को दृष्टिओझल या खारिज करने के लिए तरह-तरह के सिद्धान्त रचते हैं। इसमें आश्चर्य नहीं कि मुम्बई में 'विश्व सामाजिक मंच' के मेले के बाद 2006 में एन.जी.ओ. के धंधेबाजों ने एक बार फिर दिल्ली में 'भारतीय सामाजिक मंच' का तमाशा किया। यह भी कोई आश्चर्य की बात नहीं कि भारत के पुराने बुर्जुआ सुधारवादियों व सामाजिक जनवादियों गाँधीवादियों, सर्वोदयियों, जयप्रकाश नारायण के चेले-चाटियों तथा भाकपा-माकपा के संशोधनवादियों के साथ ही रिटायर्ड व पतित क्रान्तिकारी वामपंथियों की एक बड़ी संख्या भी एन.जी.ओ. नेटवर्क में सक्रिय है और प्रायः पर्दे के पीछे के विचार-कक्षों और कमान-कार्यालयों में अहम भूमिका निभा रही है। ये एन.जी.ओ. जनता की भलाई करते हुए जीवनयापन करने का छलावा करते हुए लाखों नेकदिल बेरोज़गार नौजवानों को अपने जाल में फँसाते हैं तथा उन्हें बहुत कम वेतन देकर शिक्षा और स्वास्थ्य आदि के उपक्रमों में लगाकर पूँजीवादी सरकार का "बोझ" हल्का करते हैं। यही नहीं, सहकारिता की आड़ में विभिन्न उत्पादक उपक्रम संगठित करके ये बहुत कम मज़दूरी पर काम करके अतिलाभ भी निचोड़ते हैं और पूँजीवादी उत्पादन तंत्र के एक पाये का काम करते हैं। ये अपनी कतारों में उन युवाओं को भरती करते हैं जो क्रान्तिकारी कतारों में शामिल होकर समाज का भविष्य बदल सकते हैं। ये ज्यादातर उन्हीं असंगठित मज़दूरों-ग़रीबों के बीच काम करते हैं, जिनके बीच क्रान्तिकारी कार्यकर्ताओं को काम करना है। इसतरह, आज एन.जी.ओ. संगठन पूँजीवादी व्यवस्था की दूसरी सुरक्षा-पंक्ति और सेफ़्टीवॉल्व के रूप में सर्वाधिक प्रभावी भूमिका निभा रहे हैं। भारत में इनकी सक्रियता का दायरा और पैमाना लगातार विस्तारित हुआ है और यह सिलसिला पिछले वर्ष भी लगातार जारी रहा।

प्रतिक्रिया की विश्वव्यापी लहर के वस्तुगत और मनोगत कारण और इस गतिरोध से उबरने का रास्ता

गुजरे कई वर्षों की ही तरह पिछले वर्ष का भी बैलेन्सशीट इसी कड़वी-नंगी सच्चाई की तसदीक करता है कि शोषण-दमन और उत्पीड़न की ताकतें प्रतिरोध की ताकतों पर हावी रही हैं। पूँजीवादी शोषण-दमन का तंत्र और अधिक संगठित हुआ है, जबकि प्रतिरोध अभी भी असंगठित है, स्वयंस्फूर्त है तथा बिखरा हुआ है। गतिरोध और निराशा का माहौल है। तो फिर वे कोने कहाँ हैं, जहाँ से उम्मीद की किरणें फूटती हैं? वे ऊँचाइयाँ कहाँ हैं, जहाँ से नये क्रान्तिकारी भविष्य के क्षितिज दिखते हैं? निश्चय ही, यह इतिहास का अन्त नहीं है। सभ्यता की पूरी विकास यात्रा, सहस्राब्दियों से जारी वर्ग संघर्ष वर्तमान पूँजीवादी असभ्यता के अनाचार-अत्याचार में ही समाप्त होने नहीं जा रही है। विश्व ऐतिहासिक स्तर पर सर्वहारा वर्ग और समाजवादी क्रान्तियों की पराजय के बाद, विश्व-शक्ति-संतुलन विगत लगभग तीन दशकों से पूँजीवाद के पक्ष में बना हुआ है। क्रान्ति की लहर पर प्रतिक्रान्ति की लहर हावी बनी हुई है। पूँजी और श्रम के अन्तरविरोध के बीच पूँजी का पहलू प्रधान बना हुआ है। और विश्व पूँजीवाद के तमाम अन्दरूनी असाध्य अन्तरविरोधों और ढाँचागत संकट के बावजूद, सर्वहारा क्रान्ति की हरावल ताकतों की वर्तमान स्थिति को देखते हुए, यही कहा जा सकता है कि पूरी दुनिया में यहाँ-वहाँ हो रहे और बढ़ते जा रहे जन संघर्षों के विस्फोटों के बावजूद, अभी एक लम्बे समय तक शायद यही स्थिति बनी रहे, क्योंकि स्वयंस्फूर्त संघर्ष यथास्थिति को नहीं बदल सकते। उसे केवल संगठित नेतृत्व वाली सचेतन क्रान्तियाँ ही बदल सकती हैं। साम्राज्यवाद के वर्तमान दौर में, श्रम और पूँजी के स्पष्टतम-तीव्रतम ध्रुवीकरण के वर्तमान दौर में, केवल मार्क्सवादी विज्ञान के मार्गदर्शन में काम करने वाली सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी के नेतृत्व में संगठित जन संघर्ष ही विश्व पैमाने के अन्तरविरोध के प्रधान पहलू को फैसलाकुन ढंग से बदल सकते हैं। वस्तुगत परिस्थितियों की दृष्टि से, साम्राज्यवाद-पूँजीवाद विरोधी नयी सर्वहारा क्रान्तियों की सर्वाधिक उर्वर और संभावनासम्पन्न ज़मीन एशिया, अफ्रीका, लातिन अमेरिका के उन पिछड़े पूँजीवादी देशों में है जहाँ प्राक्पूँजीवादी उत्पादन-सम्बन्ध मूलतः और मुख्यतः टूट चुके हैं और अवशेष-मात्र के रूप में मौजूद हैं, जहाँ पूँजीवादी उत्पादन-सम्बन्ध का वर्चस्व स्थापित हो चुका है, जहाँ की अर्थव्यवस्था विविधीकृत है, जहाँ बुनियादी एवं अवरचनागत उद्योगों सहित औद्योगिक उत्पादन का भारी विकास हुआ है तथा औद्योगिक सर्वहारा वर्ग की भारी आबादी अस्तित्व में आ चुकी है, जहाँ गाँवों में पूँजी की व्यापक पैठ के साथ ही ग्रामीण सर्वहारा-अर्द्धसर्वहारा आबादी की भी एक भारी संख्या पैदा हो चुकी है, जहाँ पूँजीवादी सामाजिक-सांस्कृतिक तंत्र के विकास के चलते सर्वहारा क्रान्ति के सहयोगी शिक्षित निम्न मध्यवर्ग और क्रान्तिकारी बुद्धिजीवी समुदाय का प्रचुर विकास हुआ है तथा जहाँ कुशल मज़दूरों एवं तकनीशियनों-वैज्ञानिकों के साथ ही विज्ञान-तकनोलॉजी के स्वतंत्र विकास के लिए ज़रूरी मानव-उपादान मौजूद हैं। ऐसे अगली कतार के क्रान्तिकारी सम्भावनासम्पन्न देशों में ब्राज़ील, अर्जेण्टीना, मेक्सिको, चीले, द. अफ्रीका, नाइज़ीरिया, मिस्त्र, ईरान, तुर्की, इण्डोनेशिया, मलयेशिया, फिलीप्पींस आदि के साथ ही भारत भी शामिल है। (चीन, पूर्व सोवियत संघ के कुछ घटक देशों, और कुछ पूर्वी यूरोपीय देशों में भी नई क्रान्तियों की परिस्थितियाँ तेज़ी से तैयार हो रही हैं, जहाँ की जनता कभी समाजवादी क्रान्ति के प्रयोगों, परिणामों को देख चुकी है, पर इन देशों की स्थिति कुछ भिन्न है जो अलग से चर्चा का विषय है)।

समस्या यह है कि तीसरी दुनिया के जिन देशों में साम्राज्यवाद-पूँजीवाद विरोधी नयी क्रान्तियों की ज़मीन तैयार है या हो रही है, वहाँ क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट शक्तियाँ बिखरी हुई हैं। वे देश स्तर की एक पार्टी के रूप में संगठित नहीं हैं और व्यापक जनता के बीच उनका आधार भी देशव्यापी नहीं है। इसका एक वस्तुगत कारण यह ज़रूर है कि सर्वहारा वर्ग और पूँजीपति वर्ग के बीच जारी विश्व ऐतिहासिक महासमर के पहले चक्र की समाप्ति और इसके दूसरे, निर्णायक चक्र की शुरुआत के बीच के अन्तराल में, प्रतिक्रिया की सभी शक्तियों ने क्रान्तिकारी शक्तियों को पीछे धकेलने-कुचलने के लिए अपनी सारी शक्ति झोंक दी है। अतीत की क्रान्तियों का शासक वर्गों ने भी समाहार किया है। हर देश की पूँजीवादी राज्यसत्ता अपने सामाजिक अवलम्बों के विकास के लिए पहले की अपेक्षा बहुत अधिक कुशलता से काम कर रही है और इसमें साम्राज्यवादी देशों और अन्तरराष्ट्रीय एजेन्सियों से भी भरपूर सहायता मिल रही है। साथ ही, आज सिनेमा, टी.वी., और प्रिण्ट मीडिया सहित समस्त संचार माध्यमों का अभूतपूर्व प्रभावी इस्तेमाल पूँजीवादी संस्कृति एवं विचारों के प्रचार-प्रसार के लिए, व्यापक जन समुदाय की दिमाग़ी गुलामी को लगातार खाद-पानी देने के लिए तथा कम्युनिज़्म, विगत सर्वहारा क्रान्तियों, उनके नेताओं और समाजवादी प्रयोगों के बारे में भाँति-भाँति के सफेद झूठों का प्रचार करके उन्हें कलंकित-लांछित करने के लिए, विश्व-स्तर पर किया जा रहा है। इस ऐतिहासिक अन्तराल की वस्तुगत स्थिति का एक अहम पहलू यह भी है कि इसी दौरान विश्व पूँजीवाद की संरचना एवं कार्य-प्रणाली में कुछ ऐसे महत्वपूर्ण बदलाव आये हैं, जिन्हें समझे बिना इक्कीसवीं शताब्दी की नयी सर्वहारा क्रान्तियों की रणनीति एवं आम रणकौशल की कोई समझ बनाई ही नहीं जा सकती। इन वैश्विक बदलावों को समझकर विश्व सर्वहारा क्रान्ति की नयी आम दिशा निर्धारित करने के लिए आज न तो विश्व सर्वहारा का मार्क्स-एंगेल्स-लेनिन-माओ जैसा कोई मान्य नेतृत्व है, न ही सोवियत संघ और चीन जैसा कोई समाजवादी देश और वहाँ की अनुभवी पार्टियों जैसी कोई पार्टी है और न ही इण्टरनेशनल जैसा दुनिया भर की पार्टियों का कोई अन्तरराष्ट्रीय मंच है। ऐसी स्थिति में विश्व पूँजीवाद की कार्यप्रणाली में, और साथ ही दुनिया के अधिकांश क्रान्तिकारी सम्भावनासम्पन्न देशों की राज्यसत्ताओं एवं सामाजिक-आर्थिक संरचनाओं में आये बदलावों को जान-समझकर क्रान्ति की मंज़िल और मार्ग को जानने-समझने का काम इन देशों के छोटे-छोटे ग्रुपों-संगठनों में बँटे-बिखरे कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठनों को ही करना है। जो कम्युनिस्ट पार्टियाँ संशोधनवादी होकर संसद-मार्ग का राही बन चुकी हैं, वे क्रान्ति मार्ग पर कदापि वापस नहीं लौट सकतीं। वे पतित होकर बुर्जुआ पार्टियाँ बन चुकी हैं, जिनका काम समाजवाद का मुखौटा लगाकर मेहनतकश जनता को धोखा देना है और पूँजीवादी व्यवस्था की दूसरी सुरक्षा-पंक्ति की भूमिका निभानी है। विपरीततम वस्तुगत स्थितियों से जूझकर अक्तूबर क्रान्तिकारी ताकतें ही कर सकती हैं जो शान्तिपूर्ण संक्रमण के हर सिद्धान्त का और संशोधनवाद के हर रूप का विरोध करती हैं, जो वर्ग-संघर्ष और सर्वहारा अधिनायकत्व के सिद्धान्त को, बुर्जुआ राज्यसत्ता को बलपूर्वक चकनाचूर करके सर्वहारा राज्यसत्ता की स्थापना के सिद्धान्त को तथा पूँजीवादी पुनर्स्थापना को रोकने के लिए समाजवादी समाज में सर्वहारा वर्ग को सर्वतोमुखी अधिनायकत्व के अन्तर्गत नये-पुराने बुर्जुआ तत्वों, बुर्जुआ अधिकारों और बुर्जुआ विचारों के विरुद्ध सतत् वर्ग संघर्ष चलाने के उस सिद्धान्त को स्वीकार करती हैं जो माओ के नेतृत्व में चीन में सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति (1966-76) के दौरान प्रतिपादित किया गया। लेकिन कम्युनिज़्म के इन क्रान्तिकारी सिद्धान्तों को स्वीकारने वाले कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठन अपनी तमाम ईमानदारी, बहादुरी और कुर्बानी के बावजूद और दुनिया के अधिकांश देशों में अपनी सक्रिय मौजूदगी के बावजूद, फिलहाल विचारधारात्मक रूप से काफ़ी कमज़ोर हैं। माओ के महान अवदानों को वैज्ञानिक भाव के बजाय वे भक्ति भाव से स्वीकार करते हैं। इसी कठमुल्लावाद के चलते वे क्रान्ति के कार्यक्रम के प्रश्न को भी प्रायः विचारधारा का प्रश्न बना देते हैं और माओ के विचारधारात्मक अवदानों को स्वीकारते हुए इस सीमा तक चले जाते हैं कि ऐसा मानने लगते हैं कि चूँकि माओ और चीन की पार्टी ने अपने समय में तीसरी दुनिया के देशों में साम्राज्यवाद-सामन्तवाद विरोधी नवजनवादी क्रान्ति की बात कही थी, इसलिए हमें वैसा ही करना होगा। इससे अलग सोचना ही वे मार्क्सवाद से विचलन मानते हैं। ये कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठन जीवन की ठोस सच्चाई को सिद्धान्तों के साँचे में फिट करने की कोशिश करते रहते हैं। यही कठमुल्लावाद है। इसी कठमुल्लावाद के चलते, साम्राज्यवाद की बुनियादी प्रकृति को समझकर आज उसकी कार्यप्रणाली एवं संरचना में आये बदलावों को समझने के

(पेज 6 पर जारी)

समस्याओं, चुनौतियों और ज़िम्मेदारियों के बारे में कुछ बातें

(पेज 5 से आगे)

बजाय अधिकांश कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठन साम्राज्यवाद को हूबहू वैसा ही देखना चाहते हैं जैसा वह लेनिन के समय में था। वे राष्ट्रीय-औपनिवेशिक प्रश्न की समाप्ति के यथार्थ को, परजीवी, अनुत्पादक वित्तीय पूँजी के भारी विस्तार एवं निर्णायक वर्चस्व के यथार्थ को, राष्ट्रपारीय निगमों के बदलते चरित्र एवं कार्यप्रणाली और वित्तीय पूँजी के भूमण्डलीकरण के यथार्थ को, पूँजीवादी उत्पादन-पद्धति में आये अहम बदलावों के यथार्थ को, भूतपूर्व उपनिवेशों में प्राक् पूँजीवादी सम्बन्धों की जगह पूँजीवादी उत्पादन-सम्बन्धों की प्रधानता तथा क्रान्ति के रणनीतिक संश्रय (वर्गों के संयुक्त मोर्चे) में परिवर्तन के यथार्थ को समझने की कोशिश करने के बजाय उनकी अनदेखी करते हैं। ऐसे में उनके क्रान्तिकारी सामाजिक प्रयोग मज़दूर वर्ग और सर्वहारा क्रान्ति के अन्य मित्र वर्गों को लामबंद करने के बजाय प्रायः लकीर की फकीरी और रुटीनी कवायद बनकर रह जाते हैं और कभी-कभी तो शासक वर्गों का कोई हिस्सा अपने आपसी संघर्षों में उनका इस्तेमाल भी कर लेता है। इस कठमुल्लावाद के चलते सामाजिक प्रयोगों की विफलता ने एक लम्बे गतिरोध और व्यापक मेहनतकश जनता से अलगाव की स्थिति पैदा की है। इस स्थिति में, दुनिया के सभी अग्रणी क्रान्तिकारी सम्भावना वाले देशों में न केवल देश स्तर की एकीकृत कम्युनिस्ट पार्टी के गठन का काम लम्बित पड़ा हुआ है, बल्कि, कठमुल्लावाद और गतिरोध की लम्बी अवधि दक्षिणपंथी और "वामपंथी" अवसरवाद के विचारधारात्मक विचलनों को जन्म दे रही है। ने.क.पा. (माओवादी) के नेतृत्व में नेपाल की विजयोन्मुख जनवादी क्रान्ति का उदाहरण देते हुए दुनिया के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शिविर में हावी कठमुल्लावादी सोच जोर-शोर से यह साबित करने की कोशिश करती है कि अभी भी तीसरी दुनिया के देशों में नवजनवादी क्रान्ति की धारा ही विश्व सर्वहारा क्रान्ति की मुख्य धारा और मुख्य कड़ी बनी हुई है। हम नेपाल के माओवादी क्रान्तिकारियों को (कुछ अहम विचारधारात्मक मतभेदों, आपत्तियों एवं आशंकाओं के बावजूद) हार्दिक इंकलाबी सलामी देते हैं, लेकिन साथ ही, विनम्रतापूर्वक यह कहना चाहते हैं कि नेपाल की विजयोन्मुख क्रान्ति इक्कीसवीं सदी में होने वाली बीसवीं सदी की क्रान्ति है। यह इतिहास का एक 'बैकलॉग' है। यह इक्कीसवीं सदी की प्रवृत्ति-निर्धारक व मार्ग-निरूपक क्रान्ति नहीं है। नेपाल दुनिया के उन थोड़े से पिछड़े देशों में से एक है, जहाँ बहुत कम औद्योगिक विकास हुआ है और जहाँ प्राक्-पूँजीवादी भूमि सम्बन्ध मुख्यतः मौजूद हैं। भारत, ब्राज़ील, अर्जेण्टीना, दक्षिण अफ्रीका आदि की ही नहीं बल्कि पाकिस्तान, श्रीलंका और बांग्लादेश जैसे देशों की स्थिति भी नेपाल से काफ़ी भिन्न है। आज तीसरी दुनिया के अधिकांश देशों में प्राक्पूँजीवादी भूमि सम्बन्ध मूलतः और मुख्यतः नष्ट हो चुके हैं। वहाँ पूँजीवादी विकास मुख्य प्रवृत्ति बन चुकी है। इन देशों का पूँजीपति वर्ग सत्तासीन होने के बाद साम्राज्यवादी देशों के पूँजीपतियों का कनिष्ठ साझेदार बन चुका है। इन देशों की बुर्जुआ राज्यसत्ताएँ देशी पूँजीपति वर्ग के साथ ही साम्राज्यवादी शोषण का भी उपकरण बनी हुई हैं। इन देशों में साम्राज्यवाद-पूँजीवाद विरोधी, नयी समाजवादी क्रान्ति की स्थिति उत्पन्न हुई है और ऐसा विश्व पूँजीवाद के इतिहास के नये दौर की एक नयी विशिष्टता है। इस नयी ऐतिहासिक परिघटना की अनदेखी आज दुनिया के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शिविर की मुख्य समस्या है। जबतक यह समस्या हल नहीं होगी, तबतक विश्व सर्वहारा क्रान्ति की नयी लहर आगे की ओर गतिमान नहीं हो सकती।

भारत में कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शिविर गतिरोध से विघटन तक की यात्रा के आवश्यक सबक : आन्दोलन की विचारधारात्मक-राजनीतिक समस्याओं-कमज़ोरियों का एक संक्षिप्त विश्लेषण एवं समाहार तथा नयी समाजवादी क्रान्ति के कार्यक्रम और पार्टी निर्माण के कार्यभार के बारे में कुछ बुनियादी बातें

भारत में क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट आन्दोलन के ठहराव-बिखराव की वर्तमान स्थिति को भी हमें इसी वैश्विक परिप्रेक्ष्य में देखना-समझना होगा। गतिरोध के कारणों को सही-सटीक ढंग से समझे बिना उसे तोड़ा नहीं जा सकता।

नक्सलबाड़ी का ऐतिहासिक किसान उभार भारतीय कम्युनिस्ट आन्दोलन के इतिहास का एक मोड़ बिन्दु था। क्रान्तिकारी कतारों ने भाकपा और माकपा के संशोधनवादी नेतृत्व से निर्णायक विच्छेद करके एक नई सर्वभारतीय क्रान्तिकारी पार्टी के गठन की दिशा में आगे कदम बढ़ाये। लेकिन इस प्रक्रिया के अंजाम तक पहुँचने के पहले ही नये नेतृत्व की विचारधारात्मक अपरिपक्वता के कारण जल्दी ही पेण्डुलम दूसरे छोर पर जा पहुँचा और नवोदित कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी आन्दोलन का प्रमुख हिस्सा "वामपंथी" दुस्साहसवाद के दलदल में जा धँसा। 1970 में "वामपंथी" दुस्साहसवाद के इसी भटकाव के साथ भा.क.पा. (मा.ले.) अस्तित्व में आई। "वामपंथी" दुस्साहसवाद की पहुँच पद्धति लाजिमी तौर पर हर मामले में कठमुल्लावादी होती है। इसी कठमुल्लावाद के चलते भा.क.पा. (मा-ले) के नेतृत्व ने अपने देश की ठोस परिस्थितियों के ठोस विश्लेषण के आधार पर 1947 के बाद भारतीय समाज के विकास की दिशा, उत्पादन-सम्बन्ध और भारतीय शासक वर्ग एवं राज्यसत्ता के चरित्र के सही-सटीक विश्लेषण के आधार पर भारतीय क्रान्ति का कार्यक्रम तय करने के बजाय, चीनी क्रान्ति के कार्यक्रम की कार्बन कापी कर लेने का सुगम-सुविधाजनक रास्ता चुना। मा-ले आन्दोलन की जिस उपधारा ने "वामपंथी" दुस्साहसवाद का विरोध करते हुए क्रान्तिकारी जनदिशा के प्रति अपनी निष्ठा जाहिर की, उसने भी कार्यक्रम के प्रश्न पर कठमुल्लावादी रवैया अपनाया और भारतीय समाज में पूँजीवादी विकास की सच्चाई की अनदेखी करते हुए नवजनवादी क्रान्ति का ही कार्यक्रम अपनाया।

भा.क.पा. (मा.ले.) में फूट-दर-फूट की जो प्रक्रिया 1971 में शुरू हुई, वह आज तक जारी है। बीच-बीच में एकता-प्रयास भी होते रहे और हर एकता कई फूटों को जन्म देती रही। भा.क.पा. (मा.ले.) के "वामपंथी दुस्साहसवाद" का विरोध करने वाली धारा भी कार्यक्रम की ग़लत समझदारी के चलते गतिरोध का शिकार हो गयी और फूट-दर-फूट एवं विघटन की प्रक्रिया से अपने को बचा नहीं पायी। जिन संगठनों ने आतंकवादी लाइन से साहसिक निर्णायक विच्छेद के बजाय इंच-इंच करके अवसरवादी ढंग से उससे पीछा छुड़ाने की कोशिश की, वे सभी आज दक्षिणपंथी अवसरवाद के दलदल में धँसे हुए हैं। तबसे लेकर आजतक छत्तीस वर्षों का समय गुजर चुका है। लम्बे ठहराव ने पूरे कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शिविर को आज विघटन के मुकाम तक ला पहुँचाया है। कुछ कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठन संसदीय मार्ग के राही बनकर भूतपूर्व कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी बन चुके हैं। शेष ऐसे हैं जो क्रान्ति और वर्ग-संघर्ष की दुहाई देते हुए राजनीतिक-सांगठनिक व्यवहार के धरातल पर ग़लीज सामाजिक-जनवादी आचरण कर रहे हैं तथा अर्थवाद-ट्रेडयूनियनवाद की गटर-गंगा में गोते लगा रहे हैं, अपने आपको माओवादी कहने वाले "वामपंथी" दुस्साहसवादी अपनी राह पर अब इतना आगे, और मार्क्सवाद से इतनी दूर जा चुके हैं कि उनकी वापसी सम्भव नहीं दिखती।

कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी आन्दोलन यदि विचारधारात्मक कमज़ोरी और अधकचरेपन का शिकार नहीं होता तो भारतीय समाज के पूँजीवादी रूपान्तरण की प्रक्रिया को गत शताब्दी के सातवें-आठवें दशक में ही समझकर समाजवादी क्रान्ति के कार्यक्रम के नतीज़े तक पहुँच सकता था। और अब तो भारतीय समाज का पूँजीवादी चरित्र इतना स्पष्ट हो चुका है कि कठमुल्लेपन से मुक्त कोई नौसिखुआ मार्क्सवादी भी इसे देख-समझ सकता है। गाँवों के छोटे और मँझोले किसान आज अपनी ज़मीन के मालिक खुद हैं और सामन्ती लगान और उत्पीड़न नहीं, बल्कि पूँजी की मार उनको लगातार जगह-ज़मीन से उजाड़कर दर-ब-दर कर रही है। किसान आबादी के विभेदीकरण और सर्वहाराकरण की प्रक्रिया एकदम स्पष्ट है। सालाना लाखों छोटे और निम्न मध्यम किसान उजड़कर सर्वहारा की कतारों में शामिल हो रहे हैं। धनी और उच्च मध्यम किसान बाज़ार के लिए पैदा कर रहे हैं और खेतों में भाड़े के मज़दूर लगाकर अधिशेष निचोड़ रहे हैं। गाँवों में अनेकशः नये रास्तों और तरीकों से वित्तीय पूँजी की पैठ बढ़ी है और देश के सुदूरवर्ती हिस्से भी एक राष्ट्रीय बाज़ार की चौहद्दी के भीतर आ गये हैं। गाँव के धनी और खुशहाल मध्यम किसान आज क्रान्तिकारी भूमि-सुधार के लिए नहीं बल्कि निचोड़े जाने वाले अधिशेष में अपनी भागीदारी बढ़ाने को लेकर आन्दोलन करते हैं। कृषि-लागत कम करने और कृषि-उत्पादों के लाभकारी मूल्यों की माँग की यही अन्तर्वस्तु है, इसे मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र का एक सामान्य विद्यार्थी भी समझ सकता है। देश के पुराने औद्योगिक केन्द्रों को पीछे छोड़ते हुए आज सुदूरवर्ती कोनों तक लाखों की आबादी वाले नये-नये औद्योगिक केन्द्र विकसित हो गये हैं। यातायात-संचार के साधनों का विगत तीन दशकों के दौरान अभूतपूर्व तीव्र गति से विकास हुआ है। आँखें खोल देने के लिए मात्र यह एक तथ्य ही काफ़ी है कि पूरे देश के संगठित-असंगठित, ग्रामीण व शहरी सर्वहारा की आबादी आज पचास करोड़ के आसपास पहुँच रही है और इसमें यदि अर्द्धसर्वहाराओं की आबादी भी जोड़ दी जाये तो यह संख्या कुल आबादी के आधे को भी पार कर जायेगी। यह किसी प्राकृतिक अर्थव्यवस्था या अर्द्धसामन्ती उत्पादन-सम्बन्धों के दायरे में कत्तई सम्भव नहीं हो सकता था। आज का भारत न केवल क्रान्तिपूर्व चीन से सर्वथा भिन्न है, बल्कि वह 1917 के रूस से भी कई गुना अधिक पूँजीवादी है। आज के भारत में केवल पूँजीवाद-विरोधी समाजवादी क्रान्ति की बात ही सोची जा सकती है। जहाँ तक साम्राज्यवाद का प्रश्न है, भारत जैसे सभी उत्तर-औपनिवेशिक, पिछड़े पूँजीवादी देश साम्राज्यवादी शोषण और लूट के शिकार हैं। हम आज भी साम्राज्यवाद के युग में ही जी रहे हैं, लेकिन साम्राज्यवादी शोषण की प्रकृति आज उपनिवेशों और नवउपनिवेशों के दौर से सर्वथा भिन्न है। भारतीय पूँजीपति वर्ग आज देशी बाज़ार पर अपना निर्णायक वर्चस्व स्थापित करने के लिए राज्यसत्ता पर कब्जा की लड़ाई नहीं लड़ रहा है। राज्यसत्ता पर तो वह 1947 से ही काबिज है। अब उसकी मुख्य लड़ाई देश की मेहनतकश आबादी और आम जनता के विरुद्ध है लेकिन उद्योगों और बाज़ार के विकास के लिए उसे पूँजी और तकनोलॉजी की दरकार है, इसके लिए ज़रूरी है कि वह साम्राज्यवादियों के साथ समझौता करे और उन्हें भी लूटने का मौक़ा दे। साथ ही, उसे अपने उत्पादित माल के लिए तथा तकनोलॉजी, तेल व अन्य ज़रूरतों के लिए विश्व बाज़ार की भी ज़रूरत है। यह ज़रूरत भी उसे विश्व बाज़ार के चौधरियों के आगे झुकने के लिए विवश करती है। अपनी इन्हीं ज़रूरतों और विवशताओं के चलते भारतीय पूँजीपति वर्ग साम्राज्यवाद के सामने झुककर समझौते करता है और उनके साथ मिलकर भारतीय जनता का शोषण करता है। ऐसा करते हुए वह साम्राज्यवादियों से निचोड़े गये कुल अधिशेष में अपनी भागीदारी बढ़ाने को लेकर मोलतोल भी करता है और दबाव भी बनाता है, लेकिन उसकी यह लड़ाई राष्ट्रीय मुक्ति की लड़ाई नहीं बल्कि बड़े लुटेरों से अपना हिस्सा बढ़ाने की छोटे लुटेरे की लड़ाई मात्र है। अपनी इस लड़ाई में भारतीय पूँजीपति वर्ग साम्राज्यवादी लुटेरों की आपसी होड़ का भी यथासम्भव लाभ उठाने की कोशिश करता है। आज़ादी के बाद के तीन दशकों तक, जनता से पाई-पाई निचोड़कर, समाजवाद के नाम पर राजकीय पूँजीवाद का ढाँचा खड़ा करके उसने साम्राज्यवादी दबाव का एक हद तक मुक़ाबला किया। लेकिन देशी निजी पूँजी की ताकत बढ़ने के साथ ही, निजीकरण की प्रक्रिया की शुरुआत हुई और फिर एक-दूसरे से आगे निकलने की होड़ में अलग-अलग पूँजीपतियों ने विदेशी कम्पनियों से पूँजी और तकनोलॉजी लेने के लिए सरकार पर दबाव बनाना शुरू किया। इसके चलते उदारीकरण की प्रक्रिया तेज हुई। निजीकरण-उदारीकरण के इस नये दौर में भारतीय अर्थव्यवस्था पर साम्राज्यवादी पूँजी का दबाव बहुत अधिक बढ़ा है, लेकिन इसका मतलब यह कदापि नहीं कि उपनिवेशवाद की वापसी हो रही है। ऐसा सोचना भारतीय पूँजीपति वर्ग की स्थिति और शक्ति को नहीं समझ पाने का नतीज़ा है। भारतीय पूँजीपति वर्ग विश्व पैमाने के अधिशेष विनियोजन में साम्राज्यवादी शक्तियों के कनिष्ठ साझीदारों की पंगत में बैठकर इस देश की राज्यसत्ता पर काबिज बना हुआ है और उसकी राज्यसत्ता साम्राज्यवादी हितों की रक्षा के लिए भी वचनबद्ध है। साम्राज्यवाद से लड़ने के लिए पूँजीपति वर्ग का कोई भी हिस्सा अब जनता के अन्य वर्गों का रणनीतिक सहयोगी नहीं बन सकता। यानी साम्राज्यवाद-विरोध का प्रश्न आज राष्ट्रीय मुक्ति का प्रश्न न रहकर देशी पूँजीपति वर्ग और उसकी राज्यसत्ता के विरुद्ध संघर्ष का ही एक अविभाज्य अंग बन गया है। भारत जैसे भूतपूर्व उपनिवेशों में आज एक सर्वथा नये प्रकार की समाजवादी क्रान्ति की साम्राज्यवाद-पूँजीवाद विरोधी क्रान्ति की स्थिति उत्पन्न हुई है। इस नयी स्थिति को समझे बिना भारतीय जनता की मुक्ति के उपक्रम को एक कदम भी आगे नहीं बढ़ाया जा सकता।

लेकिन ऐसा करने के बजाय, भारत के अधिकांश कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठन आज कर क्या रहे हैं? कुछ तो ऐसे छोटे-छोटे संगठन हैं जो कोई भी व्यावहारिक कार्रवाई करने के बजाय साल भर में मुखपत्र के एकाध अंक निकालकर और कुछ संगोष्ठी-सम्मेलन करके बस अपने ज़िन्दा होने का प्रमाण पेश करते रहते हैं। उनकी तो चर्चा ही बेकार है। कुछ ऐसे हैं जो देश की पचास करोड़ सर्वहारा आबादी को छोड़कर मालिक किसानों की लागत मूल्य कम करने और लाभकारी मूल्य तय करने की माँग को लेकर आन्दोलनों में लगे रहते हैं और व्यवहारतः सर्वहारा वर्ग के ही हितों पर कुठाराघात करते हुए, छोटे और मँझोले मालिक किसानों को भी धनी किसानों के आन्दोलनों का पुछल्ला बनाकर नरोदवाद के विकृत भारतीय संस्करण प्रस्तुत करते रहते हैं। ये लोग वस्तुतः कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी नहीं बल्कि "मार्क्सवादी" नरोदवादी हैं। कृषि और कृषि से जुड़े उद्योगों

(पेज 7 पर जारी)

गुज़रे दिनों की नाउम्मीदियों और आने वाले दिनों की उम्मीदों के बारे में कुछ बातें

(पेज 6 से आगे)

की भारी ग्रामीण सर्वहारा आबादी को संगठित करने तथा राजनीतिक प्रचार एवं आन्दोलन के द्वारा गाँव के ग़रीबों व छोटे किसानों को समाजवाद के झण्डे तले संगठित करने की कोशिशें कोई संगठन नहीं कर रहा है। इसके बजाय, यहाँ-वहाँ, सर्वोदयियों की तरह, भूमिहीनों के बीच पट्टा-वितरण जैसी माँग उठाकर कुछ संगठन ग्रामीण सर्वहारा में ज़मीन के निजी मालिकाने की भूख पैदा करके उन्हें समाजवाद के झण्डे के खिलाफ़ खड़ा करने का प्रतिगामी काम ही कर रहे हैं। औद्योगिक सर्वहारा वर्ग के बीच किसी भी मा.ले. संगठन की कोई प्रभावी पैठ-पकड़ आजतक नहीं बन पायी है। कुछ संगठन औद्योगिक सर्वहारा वर्ग में काम करने के नाम पर केवल मज़दूर वर्ग के कारख़ाना-केन्द्रित आर्थिक संघर्षों तक ही अपने को सीमित रखे हुए हैं और अर्थवाद-ट्रेडयूनियनवाद की घिनौनी बानगी पेश कर रहे हैं। मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार कार्य, उनके बीच से पार्टी-भरती और राजनीतिक माँगों के इर्द-गिर्द व्यापक मज़दूर आबादी को लामबंद करने का काम उनके एजेण्डे पर है ही नहीं। मज़दूर वर्ग के बीच जन-कार्य और पार्टी कार्य विषयक लेनिन की शिक्षाओं के एकदम उलट, ये संगठन मेंशेविकों से भी कई गुना अधिक घटिया सामाजिक जनवादी आचरण कर रहे हैं। भारतीय क्रान्ति के कार्यक्रम की ग़लत समझ के कारण, भारत का कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी आन्दोलन शासक वर्गों की आपसी मोल-तोल में, वस्तुगत तौर पर, बटखरे के रूप में इस्तेमाल हो रहा है। जब कुछ कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठन जोर-शोर से कृषि-लागत कम करने और लाभकारी मूल्य की लड़ाई लड़ते हैं तो पूँजीपति वर्ग के साथ मोल-तोल में धनी किसानों के हाथों बटखरे के रूप में इस्तेमाल हो जाते हैं। जब वे साम्राज्यवाद का विरोध करते हुए राष्ट्रीय मुक्ति का नारा देते हैं तो साम्राज्यवादियों और भारतीय पूँजीपतियों के आपसी बाँट-बखरे में भारतीय पूँजीपतियों के बटखरे के रूप में इस्तेमाल हो जाते हैं।

कुछ संगठन किताबी फार्मूले की तरह समाजवादी क्रान्ति के कार्यक्रम को स्वीकार करते हैं, लेकिन इनमें से कुछ अपनी गैर बोल्शेविक सांगठनिक कार्यशैली के कारण जनदिशा को लागू कर पाने में पूरी तरह से विफल रहे हैं और निष्क्रिय उग्रपरिवर्तनवाद का शिकार होकर आज एक मठ या सम्प्रदाय में तबदील हो चुके हैं। दूसरे कुछ ऐसे हैं जो मज़दूर वर्ग में काम करने के नाम पर केवल अर्थवादी और लोकरंजकतावादी आन्दोलनपंथी कवायद करते रहते हैं। भूमि-प्रश्न पर इनकी समझ के दिवालियेपन का आलम यह है कि कृषि के लागत मूल्य को घटाने की माँग को ये समाजवादी क्रान्ति के कार्यक्रम की एक रणनीतिक माँग मानते हैं।

अपने-आप को माओवादी कहने वाले जो "वामपंथी" दुस्साहसवादी देश के सुदूर आदिवासी अंचलों में निहायत पिछड़ी चेतना वाली जनता के बीच "मुक्तक्षेत्र" बनाने का दावा करते हैं और लाल सेना की सशस्त्र कार्रवाई के नाम पर कुछ आतंकवादी कार्रवाईयाँ करते रहते हैं, वे भी देश के अन्य विकसित हिस्सों में पूरी तरह से "मार्क्सवादी" नरोदवादी आचरण करते हुए मालिक किसानों की लागत मूल्य-लाभकारी मूल्य की माँगों पर छिटपुट आन्दोलन करते रहते हैं और यहाँ-वहाँ कुछ औद्योगिक क्षेत्रों में मज़दूरों के बीच काम के नाम पर जुझारू अर्थवाद की विकृत बानगी प्रस्तुत करते रहते हैं।

निचोड़ के तौर पर कहा जा सकता है कि तीन दशकों से भी अधिक समय से, एक ग़लत कार्यक्रम पर अमल की आधी-अधूरी कोशिशों और एक ग़ैर बोल्शेविक सांगठनिक कार्यशैली पर अमल ने भारत के अधिकांश कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठनों के पहले से ही कमज़ोर विचारधारात्मक आधार को लगातार ज्यादा से ज्यादा कमज़ोर बनाया है और उनके भटकावों को क्रान्तिकारी चरित्र के क्षरण-विघटन के मुकाम तक ला पहुँचाया है। अधिकांश संगठनों के नेतृत्व राजनीतिक अवसरवाद का शिकार हैं। वे सर्वभारतीय पार्टी खड़ी करने के प्रश्न पर संजीदा नहीं हैं और बौद्ध भिक्षुओं की तरह रुटीनी कामों का घण्टा बजाते हुए वक़्त काट रहे हैं। यदि ऐसा नहीं होता तो वे ज़रूर सोचते कि छत्तीस वर्षों से जारी ठहराव और बिखराव के कारण सर्वथा बुनियादी हैं। यदि ऐसा नहीं होता तो जूते के हिसाब से पैर काटने के बजाय वे भारतीय समाज के पूँजीवादी रूपान्तरण का अध्ययन करके कार्यक्रम के प्रश्न पर सही नतीज़े तक पहुँचने की कोशिश ज़रूर करते और कठदलीली या उपेक्षा का रवैया अपनाने के बजाय समाजवादी क्रान्ति की मंज़िल के पक्ष में दिये जाने वाले तर्कों पर संजीदगी से विचार ज़रूर करते। बहरहाल, केन्द्रीय प्रश्न आज कार्यक्रम के प्रश्न पर मतभेद का रह ही नहीं गया है। अब मूल प्रश्न विचारधारा का हो गया है। ज्यादातर संगठनों ने बोल्शेविक सांगठनिक उसूलों और कार्यप्रणाली को तिलांजलि दे दी है, उनका आचरण एकदम खुली सामाजिक जनवादी पार्टियों जैसा ही है तथा पेशेवर क्रान्तिकारी या पार्टी सदस्य के उनके पैमाने बेहद ढीले-ढाले हैं। यदि कोई संगठन विचारधारात्मक कमज़ोरी के कारण लम्बे समय तक सर्वहारा वर्ग के बीच काम ही नहीं करेगा, या फिर लम्बे समय तक अर्थवादी ढंग से काम करेगा तो कालान्तर में विच्युति भटकाव का और फिर भटकाव विचारधारा से प्रस्थान का रूप ले ही लेगा और वह संगठन लाजिमी तौर पर संशोधनवाद के गड्ढे में जा गिरेगा। यदि कोई संगठन कार्यक्रम की अपनी ग़लत समझ के कारण लम्बे समय तक मालिक किसानों की माँगों के लिए लड़ता हुआ परोक्षतः सर्वहारा वर्ग के हितों के विरुद्ध खड़ा होता रहेगा तो कालान्तर में वह एक ऐसा नरोदवादी बन ही जायेगा, जिसके ऊपर बस मार्क्सवादी का लेबल भर चिपका हुआ होगा। यानी, विचारधारात्मक कमज़ोरी के चलते भारत के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी भारतीय क्रान्ति के कार्यक्रम की सही समझ तक नहीं पहुँच सके और अब, लम्बे समय तक ग़लत कार्यक्रम के आधार पर राजनीतिक व्यवहार ने उन्हें विचारधारा का ही परित्याग करने के मुकाम तक ला पहुँचाया है। किसी भी यथार्थवादी व्यक्ति को अब इस खोखली आशा का परित्याग कर देना चाहिए कि मा.ले. शिविर के घटक संगठनों के बीच राजनीतिक वाद-विवाद और अनुभवों के आदान-प्रदान के आधार पर एकता क़ायम हो जायेगी और सर्वहारा वर्ग की एक सर्वभारतीय क्रान्तिकारी पार्टी अस्तित्व में आ जायेगी। जो छत्तीस वर्षों में नहीं हो सका, वह अब नहीं हो सकता। यदि होना ही होता तो यह गत शताब्दी के सातवें या आठवें दशक तक ही हो गया होता। अब कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शिविर की इन संरचनाओं को यदि किसी चमत्कार से एक साथ मिला भी दिया जाये तो देश स्तर की एक बोल्शेविक पार्टी की संरचना नहीं बल्कि एक ढीली-ढाली मेंशेविक पार्टी जैसी संरचना ही तैयार होगी। और सबसे प्रमुख बात तो यह है कि इन संगठनों के अवसरवादी नेतृत्व से अब यह उम्मीद पालना ही व्यर्थ है। जहाँ तक जुनूनी आतंकवादी धारा की बात है तो उनकी दुस्साहसवादी रणनीति दुर्गम जंगल-पहाड़ों और बेहद पिछड़े क्षेत्रों के बाहर लागू ही नहीं हो पायेगी और अन्य क्षेत्रों में वे कुलकों की माँग उठाते हुए नरोदवादी अमल करते रहेंगे, मज़दूरों के बीच अर्थवाद करते रहेंगे और शहरों में बुद्धिजीवियों का तुष्टीकरण करते हुए उनका दुमछल्ला बनकर सामाजिक जनवादी आचरण करते रहेंगे। इस सतमेल खिचड़ी की हाँड़ी बहुत देर आँच पर चढ़ी नहीं रह सकती। कालान्तर में, इस धारा का विघटन अवश्यम्भावी है। इससे छिटकी कुछ धाराएँ भा.क.पा. (मा.ले.) (लिबरेशन) की ही तरह सीधे संशोधनवाद का रास्ता पकड़ सकती हैं और मुमकिन है कि कोई एक या कुछ धड़े "वामपंथी" दुस्साहसवाद के परचम को उठाये हुए इस या उस सुदूर कोने में अपना अस्तित्व बनाये रखें या फिर शहरी आतंकवाद का रास्ता पकड़ लें। भारत में पूँजीवादी विकास जिस बर्बरता के साथ मध्यवर्ग के निचले हिस्सों को भी पीस और निचोड़ रहा है, उसके चलते, ख़ासकर निम्न मध्यवर्ग से, विद्रोही युवाओं का एक हिस्सा आत्मघाती उतावलेपन के साथ, व्यापक मेहनतकश जनता को जागृत व लामबंद किये बिना, स्वयं अपने साहस और आतंक एवं षड्यंत्र की रणनीति के सहारे आनन-फानन में क्रान्ति कर देने के लिए मैदान में उतरता रहेगा। निम्न पूँजीवादी क्रान्तिवाद की यह प्रवृत्ति लातिन अमेरिका से लेकर यूरोप तक के सापेक्षतः पिछड़े पूँजीवादी देशों में एक आम प्रवृत्ति के रूप में मौजूद है। विश्व सर्वहारा आन्दोलन के उद्भव से लेकर युवावस्था तक, यूरोप में (और रूस में भी) कम्युनिस्ट धारा की पूर्ववर्ती एवं सहवर्ती धारा के रूप में निम्नपूँजीवादी क्रान्तिवाद की यह प्रवृत्ति मौजूद थी और मज़दूरों के एक अच्छे-ख़ासे हिस्से पर इनका भी प्रभाव मौजूद था। आश्चर्य नहीं कि आने वाले दिनों में भारत में भी क्रान्तिकारी मज़दूर आन्दोलन के साथ-साथ मध्यवर्गीय क्रान्तिवाद की एक या विविध धाराएँ मौजूद रहें और (कोलम्बिया या अन्य कई लातिन अमेरिकी देशों के सशस्त्र ग्रुपों की तरह) उनमें से कई अपने को मार्क्सवादी या माओवादी भी कहते रहें। लेकिन समय बीतने के साथ ही मार्क्सवाद के साथ उनका दूर का रिश्ता भी बना नहीं रह पायेगा।

जहाँ तक कतारों की बात है, यह सही है कि आज भी क्रान्तिकारी कतारें मुख्यतः मा.ले. संगठनों के तहत ही संगठित हैं। पर गैर बोल्शेविक ढाँचों वाले मा.ले. संगठनों में उन्हें मार्क्सवादी विज्ञान से शिक्षित नहीं किया गया है और स्वतंत्र पहलकदमी के साहस व निर्णय लेने की क्षमता का भी उनमें अभाव है। विभिन्न संगठनों में समय काटते हुए उनकी कार्यशैली भी सामाजिक जनवादी प्रदूषण का शिकार हो रही है और निराशा का दीमक उनके भीतर भी पैठा हुआ है। उनके राजनीतिक-सांगठनिक जीवन के व्यवहार ने उन्हें स्वतंत्र एवं निर्णय लेने की क्षमता से लैस वह साहसिक चेतना और समझ नहीं दी है कि वे महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की सच्ची माओवादी स्पिरिट में 'विद्रोह न्यायसंगत है' के नारे पर अमल करते हुए अवसरवादी नेतृत्व के विरुद्ध विद्रोह कर दें और अपनी पहल पर कोई नयी शुरुआत कर सकें। लेकिन जो कतारें सैद्धान्तिक मतभेदों और विवादों की जटिलताओं को नहीं समझ पाती हैं, उनके सामने यदि कोई सही लाइन व्यवहार में, निरूतरता और सुसंगति के साथ, लागू होती और आगे बढ़ती दिखाई देती है तो फिर निर्णय तक पहुँचने में वे ज़रा भी देर नहीं करतीं। आगे भी ऐसा ही होगा।

इतिहास और वर्तमान के इसी विश्लेषण-आकलन के आधार पर हमारा यह मानना है कि भारत के कम्युनिस्ट आंदोलन का जो चरण नक्सलबाड़ी से शुरू हुआ था, वह कमोबेश गत शताब्दी के नवें दशक तक ही समाप्त हो चुका था। हमें आज के समय को उस दौर की निरंतरता के रूप में नहीं, बल्कि उसके उत्तरवर्ती दौर के रूप में देखना होगा, यानी निरंतरता और परिवर्तन के ऐतिहासिक द्वंद्व में आज हमारा ज़ोर परिवर्तन के पहलू पर होना चाहिए। निस्संदेह नक्सलबाड़ी और कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी आन्दोलन की विरासत को हम स्वीकार करते हैं और उसके साथ एक आलोचनात्मक सम्बन्ध निरंतर बनाये रखते हैं, लेकिन हमारे लिए वह अतीत की विरासत है, हमारा वर्तमान नहीं है। आज भावी भारतीय सर्वहारा क्रान्ति का हरावल दस्ता इस अतीत की राजनीतिक संरचनाओं को जोड़-मिलाकर संघटित नहीं किया जा सकता क्योंकि ये राजनीतिक संरचनाएँ अपनी बोल्शेविक स्पिरिट और चरित्र, मुख्य रूप से, ज्यादातर मामलों में, खो चुकी हैं। यानी एक एकीकृत पार्टी बनाने की प्रक्रिया का प्रधान पहलू आज बदल चुका है। आज कार्यक्रम व नीति विषयक मतभेदों को हल करके विभिन्न क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट संगठनों के ढाँचों को एक एकीकृत पार्टी के ढाँचे में विलीन कर देने का सवाल ही नहीं रह गया है, बल्कि प्रधान प्रश्न क्रान्तिकारी बोल्शेविक उसूलों एवं चरित्र वाले संगठन का ढाँचा नये सिरे से बनाने का प्रश्न बन गया है। यानी क्लासिकीय लेनिनवादी शब्दावली में कहें तो, प्रधान पहलू पार्टी-गठन का नहीं बल्कि पार्टी-निर्माण का है। जिसे अबतक कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शिविर कहा जाता रहा है, वह, मूलतः और मुख्यतः विघटित हो चुका है। अब इस शिविर के नेतृत्व से 'पॉलिमिक्स' के जरिए पार्टी-पुनर्गठन की अपेक्षा नहीं की जा सकती। बेशक जनमानस को प्रभावित करने वाले किसी भी विचार की आलोचना और उसके साथ बहस का काम तो होता ही रहता है और इससे क्रान्तिकारी कतारों की वैचारिक-राजनीतिक शिक्षा भी होती रहती है, लेकिन ऐसी राजनीतिक बहसों का लक्ष्य आज किसी संगठन के साथ एकता बनाना नहीं हो सकता। हम आज ऐसी अपेक्षा नहीं कर सकते।

सांगठनिक-राजनीतिक कार्य-योजना की आम दिशा और हमारे कार्यभार

हमें, सारे भ्रमों से मुक्त होकर, पार्टी-निर्माण के काम को साहसपूर्वक हाथ में लेना होगा। हमें नयी समाजवादी क्रान्ति के परचम को उठाकर, भारतीय सर्वहारा वर्ग के सभी हिस्सों के बीच उन साहसी क्रान्तिकारियों की टीम को लेकर जाना होगा, जिन्होंने अब तक धारा के विरुद्ध जूझते हुए अपने बोल्शेविक साहस को खरा सिद्ध किया है। हमें सभी दिशाओं में, जनता के सभी हिस्सों के बीच जाना होगा और क्रान्तिकारी प्रोपेगैण्डा एवं एजिटेशन की घनीभूत, जुझारू और निरंतर कार्रवाई चलाते हुए उन्नत चेतना के युवाओं के बीच से पेशेवर क्रान्तिकारी संगठनकर्ताओं की भरती पर, फिलहाल विशेष ज़ोर देना होगा, क्योंकि सक्षम संगठनकर्ताओं की बेहद कमी है और देश के लाखों मेहनतकश और मध्यवर्गीय युवाओं के बीच आज क्रान्तिकारी भरती की प्रचुर संभावनाएँ मौजूद हैं और आने वाले दिनों में ये संभावनाएँ बढ़ती ही चली जायेंगी।

हमें समूचे सर्वहारा वर्ग को ही संगठित करना होगा, लेकिन शुरुआती दौर में ग्रामीण सर्वहारा के बजाय हमें औद्योगिक सर्वहारा वर्ग पर केन्द्रित करना होगा और उसमें भी पहले हमें, स्थायी नौकरी, बेहतर वेतन और बेहतर जीवन वाले सापेक्षतः सफ़ेदपोश मज़दूरों की छोटी सी आबादी के बजाय झुग्गी बस्तियों में रसातल का जीवन जीने और अस्तित्व की लड़ाई लड़ने वाली उस बहुसंख्यक, असंगठित सर्वहारा आबादी पर केन्द्रित करना होगा जो अपनी उन्नत चेतना और बड़े आधुनिक उद्योगों में काम करने के बावजूद, दिहाड़ी, अस्थायी या ठेका मज़दूर के रूप में पचास-साठ रुपये की दिहाड़ी पर दस-दस, बारह-बारह घण्टे तक काम करती है और जिसे कोई भी सुविधा या सामाजिक सुरक्षा हासिल नहीं होती। यह आबादी कुल औद्योगिक सर्वहारा आबादी के 80 फीसदी के आसपास है। ग्रामीण और शहरी, कुल सर्वहारा आबादी में असंगठित मज़दूरों की संख्या 95 प्रतिशत के आसपास है। ये असंगठित मज़दूर छोटे-छोटे वर्कशापों में उन्नीसवीं शताब्दी में काम करने वाले यूरोपीय मज़दूरों के समान

(पेज 8 पर जारी)

समस्याओं, चुनौतियों और ज़िम्मेदारियों के बारे में कुछ बातें

(पेज 7 से आगे)

असंगठित नहीं हैं। ये प्रायः उन्नत तकनोलॉजी वाले आधुनिक कारख़ानों में काम करते हैं और उन्नत पूँजीवादी उत्पादन-सम्बन्धों में उजरती गुलाम के रूप में भागीदारी के चलते इनकी चेतना अत्यधिक उन्नत है। ये असंगठित मात्र इसलिए हैं कि इनकी नौकरी स्थायी नहीं होती और प्रायः ये सफ़ेदपोश मज़दूरों की तरह संशोधनवादी और बुर्जुआ पार्टियों के नेतृत्व वाली यूनियनों में संगठित नहीं हैं। इनके बीच काम करने की सबसे बड़ी समस्या है, इनके काम के घण्टे और लगातार सिर पर टँगी रोजगार-असुरक्षा की तलवार। पर यह कोई असाध्य समस्या नहीं है। हमें भूलना नहीं चाहिए कि यूरोप में जब मज़दूरों के बीच उन्नीसवीं शताब्दी में ट्रेड यूनियन कार्यों और राजनीतिक कार्यों की शुरुआत हुई थी तो वे लगभग ऐसी ही स्थिति में जी रहे थे। इस आबादी का सकारात्मक पहलू यह है कि किसी एक मालिक के कारख़ाने में काम नहीं करने के कारण इनकी चेतना उस भटकाव से मुक्त होती है, जिसे लेनिन ने "पेशागत संकुचित वृत्ति" का नाम दिया था। काम के घण्टों को कम करने, ठेका-प्रथा समाप्त करने, रोजगार गारण्टी व अन्य सामाजिक सुरक्षा की माँग ही इनकी बुनियादी माँग है। अतः इनकी लड़ाई की प्रकृति पहले दिन से ही मुख्यतः राजनीतिक होगी। वह किसी एक पूँजीपति के बजाए मुख्यतः समूचे पूँजीपति वर्ग और उसकी राज्यसत्ता के विरुद्ध केन्द्रित होगी। इन्हें संगठित करने की प्रक्रिया कठिन और लम्बी अवश्य होगी, लेकिन एकबार यह प्रक्रिया यदि आगे बढ़ गयी तो मज़दूर आन्दोलन में अर्थवादी भटकाव की ज़मीन भी काफ़ी कमज़ोर होगी और राजनीतिक संघर्षों में मज़दूर वर्ग की लामबंदी का रास्ता अधिक आसान हो जायेगा।

कारख़ाना गेटों की प्रचार कार्रवाई और कारखाना-केन्द्रित आन्दोलनों के जरिए मज़दूर वर्ग के इस हिस्से से घनिष्ठ एकता बना पाना सम्भव नहीं होगा। इसके लिए क्रान्तिकारी प्रचारकों-संगठनकर्ताओं को मज़दूर बस्तियों में पैठना-फैलना होगा, वहाँ विविध प्रकार की संस्थाएँ और अड्डे विकसित करने होंगे और व्यापक मज़दूर आबादी के बीच विविध रचनात्मक कार्य करते हुए रोजमर्रे के जीवन से जुड़े प्रश्नों, जैसे आवास, पेयजल, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि के प्रश्नों पर, आन्दोलनात्मक कार्रवाइयाँ संगठित करनी होंगी। इसके बाद काम के घण्टे, ठेका प्रथा, रोजगार-सुरक्षा जैसे प्रश्नों पर इलाकाई पैमाने पर आन्दोलन खड़ा करने की दिशा में कदम-ब-कदम आगे बढ़ना होगा।

मज़दूर वर्ग को संगठित करने का मतलब यदि कोई केवल ट्रेड यूनियन कार्य समझता है तो यह एक ट्रेड यूनियनवादी समझ है। बेशक, ट्रेड यूनियनें मज़दूर वर्ग के लिए वर्ग संघर्ष की प्राथमिक पाठशाला होती हैं, लेकिन ट्रेड यूनियन कार्रवाइयों से अपने आप पार्टी कार्य संगठित नहीं हो जाता। मज़दूरों को ट्रेड यूनियनों में संगठित करने और उनके रोज़मर्रे के संघर्षों को संगठित करने के प्रयासों के साथ-साथ हमें उनके बीच राजनीतिक प्रचार का काम समाजवाद के प्रचार का काम, मज़दूर वर्ग के ऐतिहासिक मिशन के प्रचार का काम शुरू कर देना होगा। मज़दूर आंदोलन में वैज्ञानिक समाजवाद की विचारधारा केवल ऐसे सचेतन प्रयासों से ही डाली और स्थापित की जा सकती है। इस काम में मज़दूर वर्ग के एक राजनीतिक अख़बार की भूमिका सबसे अहम होगी। ऐसा अख़बार राजनीतिक प्रचारक-संगठनकर्ता-आंदोलनकर्ता के हाथों में पहुँचकर स्वयं एक प्रचारक-संगठनकर्ता-आंदोलनकर्ता बन जायेगा तथा मज़दूरों के बीच से पार्टी-भरती और मज़दूरों की क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षा का प्रमुख साधन बन जायेगा। ऐसे अख़बार के मज़दूर रिपोर्टरों-एजेण्टों-वितरकों का एक पूरा नेटवर्क खड़ा किया जा सकता है, उसके लिए मज़दूरों से नियमित सहयोग जुटाने वाली टोलियाँ बनाई जा सकती हैं और अख़बार के नियमित जागरूक पाठकों को तथा मज़दूर रिपोर्टरों-एजेण्टों को लेकर जगह-जगह मज़दूरों के मार्क्सवादी अध्ययन-मण्डल संगठित किये जा सकते हैं। इस प्रक्रिया में मज़दूरों के बीच से पार्टी-भरती और राजनीतिक शिक्षा के काम को आगे बढ़ाकर हमें पार्टी-निर्माण के काम को आगे बढ़ाना होगा।

इस तरह मज़दूरों के बीच से पार्टी-संगठनकर्ताओं और कार्यकर्ताओं की भरती और तैयारी के बाद ही ट्रेड-यूनियन कार्य को आगे की मंज़िल में ले जाया जा सकता है तथा उसे अर्थवाद-ट्रेडयूनियनवाद से मुक्त रखते हुए क्रान्तिकारी लाइन पर क़ायम रखने की एक बुनियादी गारण्टी हासिल की जा सकती है। साथ ही, ऐसा करके ही, किसी कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी पार्टी के कम्पोज़ीशन में मध्यवर्गीय पृष्ठभूमि से आये पेशेवर क्रान्तिकारी व ऐक्टिविस्ट साथियों के मुकाबले मज़दूर पृष्ठभूमि के साथियों का अनुपात क्रमशः ज़्यादा से ज़्यादा बढ़ाया जा सकता है, पार्टी के क्रान्तिकारी सर्वहारा हिरावल चरित्र को ज़्यादा से ज़्यादा मजबूत बनाया जा सकता है, पार्टी के भीतर विजातीय तत्वों और लाइनों के खिलाफ़ नीचे से निगरानी का माहौल तैयार किया जा सकता है और इनकी ज़मीन कमज़ोर की जा सकती है। इसके साथ ही कम्युनिस्ट संगठनकर्ताओं को व्यापक मज़दूर आबादी के बीच तरह-तरह की संस्थाएँ जनदुर्ग के स्तम्भों के रूप में खड़ी करनी होंगी और व्यापक सार्वजनिक मंच संगठित करने होंगे। ये संस्थाएं और ये मंच न केवल वर्ग के हिरावल दस्ते को वर्ग के साथ मजबूती से जोड़ने का काम करेंगे, बल्कि इनके नेतृत्व और संचालन के जरिए आम मेहनतकश राजकाज और समाज के ढाँचे को चलाने का प्रशिक्षण भी लेंगे तथा अभ्यास भी करेंगे। इसे जनता की वैकल्पिक सत्ता के भ्रूण के रूप में देखा जा सकता है, जिन्हें शुरुआती दौर से ही हमें सचेतन रूप से विकसित करना होगा। भविष्य में इनके अमली रूप किस रूप में सामने आयेंगे, यह हम आज नहीं बता सकते, लेकिन क्रान्तिकारी लोक स्वराज्य पंचायत के रूप में हम वैकल्पिक लोक सत्ता के सचेतन विकास की इसी अवधारणा को प्रस्तुत करना चाहते हैं। अक्तूबर क्रान्ति के पूर्व सोवियतों का विकास स्वयंस्फूर्त ढंग से (सबसे पहले 1905-07 की क्रान्ति के दौरान) हुआ था, जिसे बोल्शेविकों ने सर्वहारा सत्ता का केन्द्रीय ऑर्गन बना दिया। अब इक्कीसवीं शताब्दी में, भारत के सर्वहारा क्रान्तिकारियों को नयी समाजवादी क्रान्ति की तैयारी करते हुए मेहनतकश वर्गों की वैकल्पिक क्रान्तिकारी सत्ता को सचेतन रूप से विकसित करना होगा और ऐसा शुरुआती दौर से ही करना होगा। यह एक विस्तृत चर्चा का विषय है, लेकिन यहाँ इतना बता देना ज़रूरी है कि आज की दुनिया में मजबूत सामाजिक अवलंबों वाली किसी बुर्जुआ राज्यसत्ता को आम बग़ावत के द्वारा चकनाचूर करने के लिए "वर्गों के बीच लम्बा अवस्थितिगत युद्ध" अवश्यम्भावी होगा और इस "युद्ध" में सर्वहारा वर्ग और मेहनतकश जनता के ऐसे जनदुर्गों की अपरिहार्यतः महत्वपूर्ण भूमिका होगी। साथ ही, जनता की वैकल्पिक सत्ता के निर्माण की प्रक्रिया को सचेतन रूप से आगे बढ़ाकर ही, क्रान्ति के बाद सर्वहारा जनवाद के आधार को व्यापक बनाया जा सकता है और पूँजीवादी पुनर्स्थापना के लिए सचेष्ट बुर्जुआ तत्वों के विरुद्ध सतत् संघर्ष अधिक प्रभावी, निर्मम निर्णायक और समझौताहीन ढंग से चलाया जा सकता है। स्पष्ट है कि नयी समाजवादी क्रान्ति की सोच से जुड़ी वैकल्पिक सत्ता के सचेतन निर्माण की अवधारणा के पीछे सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की शिक्षाओं की अहम भूमिका है।

जहाँ तक औद्योगिक मज़दूर वर्ग के बीच ट्रेड यूनियन कार्यों की बात है, हमें कारख़ाना-केन्द्रित यूनियनों में काम करने और उनपर अपनी राजनीति का वर्चस्व स्थापित करने के हर अनुकूल अवसर का इस्तेमाल करना चाहिए, लेकिन हमारा ज़ोर (असंगठित मज़दूर आबादी को मुख्य लक्ष्य बनाने के नाते) मुख्य तौर पर, यदि ताकत जुट जाये तो, इलाकाई पैमाने पर मज़दूरों की यूनियनें संगठित करने पर होना चाहिए। आज इसके लिए वस्तुगत परिस्थितियाँ, पहले हमेशा से अधिक अनुकूल हैं।

आज की मंज़िल में, आगे के कार्यभारों की चर्चा हम संक्षेप में आम दिशा के रूप में ही कर सकते हैं। अपने विकास की आगे की मंजिल में, कोई कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठन या सर्वभारतीय पार्टी औद्योगिक सर्वहारा वर्ग के बाद दूसरी प्राथमिकता में अपना काम गाँवों की विशाल सर्वहारा अर्द्धसर्वहारा आबादी पर केन्द्रित करेगी। उसका काम गाँव के ग़रीबों में ज़मीन की भूख पैदा करना नहीं बल्कि उन्हें यह बतलाना होगा कि ज़मीन के किसी छोटे टुकड़े का मालिकाना न तो उनकी समस्याओं का समाधान है, न ही पूँजी की मार से वे उसे बचा ही सकते हैं। केवल समाजवाद के अन्तर्गत भूमि का सामुदायिक व राजकीय स्वामित्व ही उनकी समस्या का समाधान हो सकता है और उनकी आज़ादी एवं समानता की, उनके जनवादी अधिकारों की एकमात्र गारण्टी हो सकता है। हमें उनके राजनीतिक संघर्षों को बुर्जुआ राज्यसत्ता के विरुद्ध केन्द्रित करना होगा और मज़दूरी के सवाल पर उनके आर्थिक संघर्ष को गाँव के पूँजीवादी भूस्वामियों व कृषि-आधारित उद्योगों के मालिकों के विरुद्ध केन्द्रित करना होगा। पूँजी की मार से त्रस्त छोटे और निम्न मध्यम मालिक किसानों को भी हमें लगातार यह बताना होगा कि पूँजीवादी समाज में जगह-ज़मीन से उजड़कर सर्वहारा की कतारों में शामिल होना उनकी नियति है, कि लागत मूल्य और लाभकारी मूल्य की लड़ाई से उन्हें कुछ भी हासिल नहीं होगा और उनके सामने एकमात्र रास्ता यही है कि वे सर्वहारा वर्ग के साथ मिलकर साम्राज्यवाद, पूँजीवाद और धनी किसानों की सत्ता के विरुद्ध, समाजवाद के लिए संघर्ष करें। इसके ऊपर मँझोले मालिक किसानों का जो मध्यवर्ती संस्तर है, उसे पूँजी और श्रम के बीच की लड़ाई में तटस्थ या निष्क्रिय बनाने की हर चन्द कोशिश करनी होगी, पूँजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध केन्द्रित उसकी माँगों को पूरा समर्थन देना होगा, ऐसी माँगों पर उनके आन्दोलन (जनता के अन्य वर्गों के साथ साझा आन्दोलन) संगठित करने होंगे तथा बड़े मालिक किसानों के आन्दोलनों से उन्हें अलग करने की हर सम्भव कोशिश करनी होगी।

इसके बाद कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों का अगला लक्ष्य शहरों में सेवाक्षेत्र और वाणिज्य से जुड़े सर्वहारा वर्ग को उनके आर्थिक और राजनीतिक माँगों पर संगठित करना होगा। शहरी मध्यवर्ग का एक छोटा-सा ऊपरी हिस्सा आज समृद्धि और विलासिता के शिखर पर बैठा हुआ है और पूँजीवादी व्यवस्था का सर्वाधिक विश्वस्त स्तम्भ की भूमिका निभा रहा है। उसका मध्यवर्ती संस्तर बस जैसे-तैसे अपने अस्तित्व को बनाये हुए है, समृद्धि के सपने पाले हुए कभी वह ऊपर की ओर देखता है, तो कभी मोहभंग की स्थिति में व्यवस्था-विरोध की बातें करता है। शेष निम्न मध्यवर्ग की एक भारी आबादी है जो पूँजी की मार से त्रस्त है और रोज़मर्रे की ज़रूरतों भी मुश्किल से ही जुटाती हुई लगातार तमाम अनिश्चितताओं के बीच जी रही है। इस तबके के युवाओं के सामने बेरोज़गारी की विकराल समस्या मुँह बाये खड़ी है। लगातार क्रान्तिकारी प्रचार की कार्रवाई के द्वारा कम्युनिज़्म के प्रति इसके पूर्वाग्रहों और भ्रान्तियों को तोड़कर इसे समाजवाद के पक्ष में खड़ा किया जा सकता है। रोजगार और बुनियादी नागरिक माँगों पर मध्यवर्ग के इस हिस्से को संगठित करके क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट इसे सर्वहारा वर्ग के साथ मोर्चे में साथ ला सकते हैं।

भारतीय सर्वहारा वर्ग का हिरावल दस्ता शहरों और गाँवों की सर्वहारा आबादी को संगठित करने के साथ ही तीन वर्गों का रणनीतिक संयुक्त मोर्चा (गाँवों शहरों की सर्वहारा आबादी, छोटे मालिक किसानों सहित गाँवों-शहरों की अर्द्धसर्वहारा आबादी तथा उनके दुलमुल दोस्त के रूप में मध्यम किसान एवं गाँवों-शहरों का मध्यवर्ग) क़ायम करके ही नयी समाजवादी क्रान्ति को साम्राज्यवाद-पूँजीवाद विरोधी क्रान्ति को सफल बना सकता है। पूँजीवादी भूस्वामी-फार्मर-कुलक और सभी छोटे-बड़े पूँजीपति आज क्रान्ति के दुश्मनों की श्रेणी में आते हैं। केवल नयी समाजवादी क्रान्ति का रास्ता ही आज भारतीय जनता की मुक्ति का रास्ता हो सकता है। इसके कार्यक्रम को अमल में लाने वाली सर्वहारा वर्ग की पार्टी के निर्माण की दिशा में आगे कदम बढ़ाकर ही आज के गतिरोध को तोड़ा जा सकता है। दूसरा कोई भी रास्ता नहीं है।

नयी शुरुआत कहाँ से करें और प्राथमिकताओं एवं ज़ोर का निर्धारण किस प्रकार और किस रूप में करें?

सर्वहारा के हिरावल दस्ते के फिर से निर्माण की प्रक्रिया आज, अभी प्रारम्भिक अवस्था में है, बस शुरुआत करने भर की स्थिति में है। ऐसी स्थिति में सभी मोर्चों पर सभी कामों को एक साथ हाथ में कत्तई नहीं लिया जा सकता। आज का महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि शुरुआत कहाँ से करें और हमारे कामों की प्राथमिकता क्या हो?

पार्टी-निर्माण के काम को आज का प्रमुख काम मानते हुए, सबसे पहले यह ज़रूरी है कि हम चन्द एक चुने हुए औद्योगिक केन्द्रों में औद्योगिक सर्वहारा वर्ग के बीच अपनी मुख्य एवं सर्वाधिक ताक़त केन्द्रित करें। वहाँ मज़दूरों के जीवन के साथ एकरूप होकर क्रान्तिकारी संगठनकर्ताओं को ठोस परिस्थितियों के हर पहलू की जाँच पड़ताल एवं अध्ययन करना होगा, मज़दूर आबादी के बीच तरह-तरह की संस्थाएँ बनाकर रचनात्मक कार्य करने होंगे, ताकत एवं अनुकूल अवसर के हिसाब से मज़दूरों के रोज़मर्रे के आर्थिक एवं राजनीतिक संघर्षों में भागीदारी करते हुए उनके बीच व्यवहार के धरातल पर क्रान्तिकारी वाम राजनीति का प्राधिकार स्थापित करना होगा और इसके साथ-साथ राजनीतिक शिक्षा एवं प्रचार की कार्रवाइयाँ विशेष ज़ोर देकर संगठित करना होगा। यह ज़रूरी है कि मज़दूर वर्ग के बीच से पार्टी-भरती और उस नयी भरती की राजनीतिक शिक्षा एवं सांगठनिक-राजनीतिक कार्यों में उसके मार्गदर्शन के लिए मज़दूर वर्ग का एक ऐसा राजनीतिक अख़बार नियमित रूप से प्रकाशित किया जाये तो मज़दूर वर्ग के ऐतिहासिक मिशन और समाजवाद का सीधे प्रचार करते हुए मज़दूरों के शिक्षक, प्रचारक और संगठनकर्ता की भूमिका निभाये। ऐसा अख़बार पार्टी-निर्माण के प्रमुख उपकरण की भूमिका निभायेगा।

लेकिन इतने कामों को अंजाम देने के लिए तथा एक छोटे से पार्टी संगठन के ज़रूरी बुनियादी पार्टी कामों को करने के लिए भी आज सक्षम संगठनकर्ताओं की भारी कमी है। इसलिए, आज की फ़ौरी ज़रूरत यह है कि असरदार ढंग से शुरुआत करने के लिए, जल्दी से जल्दी कुछ सक्षम पेशेवर संगठनकर्ताओं की भरती हो, चाहे वह मध्य वर्ग से हो या मज़दूर वर्ग से। इस फ़ौरी ज़रूरत के लिए

(पेज 9 पर जारी)

गुज़रे दिनों की नाउम्मीदियों और आने वाले दिनों की उम्मीदों के बारे में कुछ बातें

(पेज 8 से आगे)

उचित और व्यावहारिक यही होगा कि मज़दूर वर्ग के बीच प्रचार, शिक्षा एवं आन्दोलन की कार्रवाई को 'लो प्रोफाइल' पर जारी रखते हुए, शुरू के कुछ वर्षों के दौरान मध्यवर्गीय शिक्षित युवाओं और छात्रों के मोर्चे पर क्रान्तिकारी भरती को कमान में रखते हुए, कामों पर सबसे अधिक ज़ोर दिया जाये और फिर सक्षम पेशेवर क्रान्तिकारी संगठनकर्ताओं की एक नयी टीम जुटाकर मज़दूरों के बीच कामों पर ज़ोर को मुख्य बना दिया जाये। पेशेवर क्रान्तिकारियों की भरती मज़दूरों के बीच से भी होगी और वहीं भावी क्रान्तिकारी पार्टी की केन्द्रीय शक्ति होगी, लेकिन भारतीय सर्वहारा वर्ग की वर्तमान स्थिति को देखते हुए, उसमें थोड़ा लम्बा समय लगेगा। इसलिए, कम समय में शुरुआती ताकत जुटाने के लिए प्रारम्भ के कुछ वर्षों के दौरान शिक्षित मध्य वर्ग के उन्नत और जुझारू तत्वों की पार्टी-भरती पर ज़्यादा बल देना ही आज की परिस्थितियों में एक सही कदम होगा। फिर ताकत बढ़ते जाने के साथ ही हमें प्राथमिकता-क्रम से उन वर्गों के बीच और उन मोर्चों पर अपने कामों का विस्तार करते जाना होगा, जिनकी चर्चा हमने ऊपर की है।

लेकिन पार्टी-निर्माण के काम की इस प्रारम्भिक अवस्था में भी, बुनियादी विचारधारात्मक कार्यभारों की उपेक्षा नहीं की जा सकती या उन्हें टाला नहीं जा सकता। विपर्यय और पूँजीवादी पुनरुत्थान के वर्तमान अन्धकारमय दौर में पूरी दुनिया की बुर्जुआ मीडिया और बुर्जुआ राजनीतिक साहित्य ने समाजवाद के बारे में तरह-तरह के कुत्सा प्रचार करके विगत सर्वहारा क्रान्तियों की तमाम विस्मयकारी उपलब्धियों को झूठ के अम्बार तले ढँक दिया है। आज की युवा पीढ़ी सर्वहारा क्रान्ति के विज्ञान और विगत सर्वहारा क्रान्तियों की वास्तविकताओं से सर्वथा अपरिचित है। उसे यह बताने की ज़रूरत है कि मार्क्सवाद के सिद्धान्त क्या कहते हैं और इन सिद्धान्तों को अमल में लाते हुए बीसवीं शताब्दी की सर्वहारा क्रान्तियों ने क्या उपलब्धियाँ हासिल कीं। उन्हें यह बताना होगा कि सर्वहारा क्रान्तियों के प्रथम संस्करणों की पराजय कोई अप्रत्याशित बात नहीं थी और फिर उनके नये संस्करणों का सृजन और विश्व पूँजीवाद की पराजय भी अवश्यम्भावी है। उन्हें यह बताना होगा कि विगत क्रान्तियों ने पराजय के बावजूद, पूँजीवादी पुनर्स्थापना को रोकने का उपाय भी बताया है और इस सन्दर्भ में चीन की सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की शिक्षाओं का युगान्तरकारी महत्व है। आज के सर्वहारा वर्ग की नयी पीढ़ी को इतिहास की इन्हीं शिक्षाओं से परिचित कराने के कार्यभार को हम नये सर्वहारा पुनर्जागरण का नाम देते हैं। लेकिन इक्कीसवीं सदी की सर्वहारा क्रान्तियाँ हू ब हू बीसवीं सदी की सर्वहारा क्रान्तियों के नक़्शेक़दम पर नहीं चलेंगी। ये अपनी महान पूर्वज क्रान्तियों से ज़रूरी बुनियादी शिक्षाएँ लेंगी और फिर इस विरासत के साथ, वर्तमान परिस्थितियों का अध्ययन करके, पूँजी की सत्ता को निर्णायक शिकस्त देने की रणनीति एवं आम रणकौशल विकसित करेंगी। यह प्रक्रिया गहन सामाजिक प्रयोग, उनके सैद्धान्तिक समाहार, गम्भीर शोध-अध्ययन, वाद-विवाद, विचार-विमर्श और फिर नई सर्वहारा क्रान्तियों की प्रकृति, स्वरूप एवं रास्ते से सर्वहारा वर्ग और क्रान्तिकारी जनसमुदाय को परिचित कराने की प्रक्रिया होगी। इन्हीं कार्यभारों को हम नये सर्वहारा प्रबोधन के कार्यभार के रूप में प्रस्तुत करते हैं। मार्क्सवादी दर्शन को सर्वतोमुखी नयी समृद्धि तो भावी नयी समाजवादी क्रान्तियाँ ही प्रदान करेंगी, लेकिन यह प्रक्रिया नये सर्वहारा प्रबोधन के कार्यभारों को अंजाम देने के साथ ही शुरू हो जायेगी। नये सर्वहारा पुनर्जागरण और नये सर्वहारा प्रबोधन के कार्यभार विश्व-ऐतिहासिक विपर्यय के वर्तमान दौर में, तथा विश्व पूँजीवाद की प्रकृति एवं कार्यप्रणाली का अध्ययन करके श्रम और पूँजी के बीच के विश्व-ऐतिहासिक महासमर के अगले चक्र में पूँजी की शक्तियों की अन्तिम रूप से पराजय को सुनिश्चित बनाने की सर्वतोमुखी तैयारियों के कठिन चुनौतीपूर्ण दौर में, सर्वहारा वर्ग के अनिवार्य कार्यभार हैं जिन्हें सर्वहारा वर्ग का हिरावल दस्ता अपनी सचेतन कार्रवाइयों के द्वारा नेतृत्व प्रदान करेगा। ये कार्यभार पार्टी-निर्माण के कार्यभारों के साथ अविभाज्यतः जुड़े हुए हैं और पार्टी-निर्माण के प्रारम्भिक चरण से ही इन्हें हाथ में लेना ही होगा, चाहे हमारे ऊपर अन्य आवश्यक राजनीतिक-सांगठनिक कामों का बोझ कितना भी अधिक क्यों न हो! इन कार्यभारों को पूरा करने वाला नेतृत्व ही नयी समाजवादी क्रान्ति की लाइन को आगे बढ़ाने के लिए सैद्धान्तिक अध्ययन और ठोस सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक परिस्थितियों के अध्ययन के कामों को सफलतापूर्वक आगे बढ़ा पायेगा।

एक नयी लाइन जैसे-जैसे सुनिश्चित शक़्ल अख़्तियार करती जाती है, वैसे-वैसे कार्यकर्ता निर्णायक होते चले जाते हैं। लेकिन यह प्रक्रिया अपने आप घटित नहीं होती। एक सही लाइन के नतीज़े तक पहुँचने के बाद सांगठनिक कार्यों पर विशेष ज़ोर बढ़ा देना पड़ता है। तभी जाकर कतारें निर्णायक ढंग से प्रभावी हो पाती हैं। लाइन के विकास के संदर्भ में अभी काफी कुछ किया जाना है, लेकिन नयी समाजवादी क्रान्ति की आम दिशा और आम स्वरूप आज हमारे सामने है। इसलिए, अब समय आ गया है कि सांगठनिक कार्यों पर हम विशेष ज़ोर दें। सबसे पहले ज़रूरी है कि तमाम विजातीय तत्वों और तमाम ढुलमुलयक़ीनों को तमाम कायरों-निठल्लों और तमाम अवसरवादियों को छाँट-बीनकर बाहर फेंक दिया जाये। कूड़ा-करकट की सफ़ाई लोहे के हाथों से करनी होगी और बोल्शेविक परम्परा को महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की शिक्षाओं के आलोक में आगे बढ़ाते हुए जनवादी केन्द्रीयता पर आधारित इस्पाती सांगठनिक ढाँचे का निर्माण करना होगा। पार्टी-निर्माण के वर्तमान दौर की अन्तर्वस्तु के हिसाब से सांगठनिक ढाँचा खड़ा करना ही आज पार्टी-गठन का कार्यभार है, जिसकी उपेक्षा कदापि नहीं की जा सकती।

नयी समाजवादी क्रान्ति के तूफ़ान को निमंत्रण दो! सर्वहारा के हिरावलों से अपेक्षा है स्वतंत्र वैज्ञानिक विवेक की और धारा के विरुद्ध तैरने के साहस की!

इतिहास में पहले भी कई बार ऐसा देखा गया है कि राजनीतिक पटल पर शासक वर्गों के आपसी संघर्ष ही सक्रिय और मुखर दिखते हैं तथा शासक वर्गों और शासित वर्गों के बीच के अन्तरविरोध नेपथ्य के नीम अँधेरे में धकेल दिये जाते हैं। ऐसा तब होता है जब क्रान्ति की लहर पर प्रतिक्रान्ति की लहर हावी होती है, ऐतिहासिक प्रगति की शक्तियों पर गतिरोध और विपर्यय की शक्तियाँ हावी होती हैं। हमारा समय विपर्यय और प्रतिक्रिया का ऐसा ही अँधेरा समय है। और यह अँधेरा पहले के ऐसे ही कालखण्डों की तुलना में बहुत अधिक गहरा है, क्योंकि यह श्रम और पूँजी के बीच के विश्व ऐतिहासिक महासमर के दो चक्रों के बीच का ऐसा अन्तराल है, जब पहला चक्र श्रम की शक्तियों के पराजय के साथ समाप्त हुआ है और दूसरा चक्र अभी शुरू नहीं हो सका है। विश्व-पूँजीवाद के ढाँचागत असाध्य संकट, उसकी चरम परजीविता, साम्राज्यवादी लुटेरों की फिर से गहराती प्रतिस्पर्द्धा, पूरी दुनिया के विभिन्न हिस्सों में साम्राज्यवादी बर्बरता और पूँजीवादी लूट-खसोट के विरुद्ध जनसमुदाय की लगातार बढ़ती नफ़रत और इस कठिन समय में क्रान्तिकारी सर्वहारा नेतृत्व के अभाव के बावजूद दुनिया के किसी न किसी कोने में भड़कते रहने वाले जन संघर्षों का सिलसिला यह स्पष्ट संकेत दे रहे हैं कि आने वाले समय में विश्व पूँजीवाद के विरुद्ध लड़ा जाने वाला युद्ध निर्णायक होगा। श्रम और पूँजी के बीच विश्व ऐतिहासिक महासमर का अगला चक्र निर्णायक होगा क्योंकि अपनी जड़ता की शक्ति ये जीवित विश्व पूँजीवाद में अब इतनी जीवन शक्ति नहीं बची है कि अक्तूबर क्रान्ति के नये संस्करणों द्वारा पराजित होने के बाद वह फिर विश्वस्तर पर उठ खड़ा हो और दुनिया को विश्वव्यापी विपर्यय का एक और दौर देखना पड़े। इक्कीसवीं सदी की सर्वहारा क्रान्तियों के ऊपर पूँजीवाद के पूरे युग को इतिहास की कचरा-पेटी के हवाले करने की ज़िम्मेदारी है। साथ ही, ये क्रान्तियाँ केवल पाँच सौ वर्षों की आयु वाले पूँजीवाद के विरुद्ध ही नहीं, बल्कि पाँच हज़ार वर्षों की आयु वाले समूचे वर्ग समाज के विरुद्ध निर्णायक क्रान्तियाँ होंगी, क्योंकि पूँजीवाद के बाद मानव सभ्यता के अगले युग केवल समाजवादी संक्रमण और कम्युनिज़्म के युग ही हो सकते हैं समाज-विकास की गतिकी का ऐतिहासिक-वैज्ञानिक अध्ययन यही बताता है।

इसलिए, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि भावी क्रान्तियों को रोकने के लिए विश्व-पूँजीवाद आज अपनी समस्त आत्मिक-भौतिक शक्ति का व्यापकतम, सूक्ष्मतम और कुशलतम इस्तेमाल कर रहा है। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि विश्व ऐतिहासिक महासमर के निर्णायक चक्र के पहले, प्रतिक्रिया और विपर्यय का अँधेरा इतना गहरा है और गतिरोध का यह कालखण्ड भी पहले के ऐसे ही कालखण्डों की अपेक्षा बहुत अधिक लम्बा है। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि पूरी दुनिया में नई सर्वहारा क्रान्तियों की हिरावल शक्तियाँ अभी भी ठहराव और बिखराव की शिकार हैं। यह सबकुछ इसलिए है कि हम युग-परिवर्तन के अबतक के सबसे प्रचण्ड झंझावाती समय की पूर्वबेला में जी रहे हैं।

यह एक ऐसा समय है जब इतिहास का एजेण्डा तय करने की ताक़त शासक वर्गों के हाथों में है। कल इतिहास का एजेण्डा तय करने की कमान सर्वहारा वर्ग के हाथों में होगी। यह एक ऐसा समय है जब शताब्दियों के समय में चन्द दिनों के काम पूरे होते हैं, यानी इतिहास की गति इतनी मद्धम होती है कि गतिहीनता का आभास होता है। लेकिन इसके बाद एक ऐसा समय आना ही है जब शताब्दियों के काम चन्द दिनों में अंजाम दिये जायेंगे।

लेकिन गतिरोध के इस दौर की सच्चाइयों को समझने का यह मतलब नहीं कि हम इतमीनान और आराम के साथ काम करें। हमें अनवरत उद्विग्न आत्मा के साथ काम करना होगा, जान लड़ाकर काम करना होगा। केवल वस्तुगत परिस्थितियों से प्रभावित होना इंकलाबियों की फितरत नहीं। वे मनोगत उपादानों से वस्तुगत सीमाओं को सिकोड़ने-तोड़ने के उद्यम को कभी नहीं छोड़ते। अपनी कम ताकत को हमेशा कम करके ही नहीं आँका जाना चाहिए। अतीत की क्रान्तियाँ बताती हैं कि एक बार यदि सही राजनीतिक लाइन के निष्कर्ष तक पहुँच जाया जाये और सही सांगठनिक लाइन के आधार पर सांगठनिक काम करके उस राजनीतिक लाइन को अमल में लाने वाली क्रान्तिकारी कतारों की शक्ति को लाभबंद कर दिया जाये तो बहुत कम समय में हालात को उलट-पुलटकर विस्मयकारी परिणाम हासिल किये जा सकते हैं। हमें धारा के एकदम विरुद्ध तैरना है। इसलिए, हमें विचारधारा पर अडिग रहना होगा, नये प्रयोगों के वैज्ञानिक साहस में रत्ती भर कमी नहीं आने देनी होगी, जी-जान से जुटकर पार्टी-निर्माण के काम को अंजाम देना होगा और वर्षों के काम को चन्द दिनों में पूरा करने का जज़्बा, हर हाल में कठिन से कठिन स्थितियों में भी बनाये रखना होगा।

लेकिन पिनोशे जैसे पूँजीवादी नरपिशाचों की बिरादरी अभी ज़िन्दा है!

(पेज 4 से आगे)

संगठित हो ही नहीं सकती थी कि वह देशी-विदेशी प्रतिक्रियावादियों के क्रान्तिविरोधी षड्यन्त्रों के ख़िलाफ़ सक्रिय प्रतिरोध करती। इसी कमजोरी के कारण सी.आई.ए. और पिनोशे के षड्यन्त्र इतनी आसानी से कामयाब हो गये।

अलेन्दे का विभ्रम कितना व्यापक और गहरा था इसका अन्दाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि सी.आई.ए. के षड्यंत्रों के तहत जब 1972 के आख़िरी महीनों में एक प्रतिक्रियावादी आम हड़ताल हुई थी तो उसे नियन्त्रित करने के लिए स्वयं अलेन्दे ने ही पिनोशे को ज़िम्मेदारी दी थी, जो उस समय केवल गैरिसन कमाण्डर था। इस घटना के दौरान ही पिनोशे को पहली बार चीले की आम जनता ने जाना था। उसने अलेन्दे द्वारा सौंपी गयी ज़िम्मेदारी को न केवल पूरी तरह निभाया बल्कि यह मक्कारी भरी घोषणा करके अलेन्दे और जनता के मन में विश्वसनीयता भी अर्जित करने की कोशिश की कि "मैं उपद्रव फैलाने वालों को बर्दाश्त नहीं करूँगा चाहे वे किसी भी राजनीतिक विचारधारा वाले हों।"

पिनोशे की इस लोमड़ी चाल को अलेन्दे नहीं भाँप सके और उसके ऊपरी तटस्थ रुख़ पर भरोसा करते हुए अगस्त 1973 में सेनाध्यक्ष बना दिया। अलेन्दे सी.आई.ए. द्वारा बिछायी गयी बिसात में उलझ चुके थे और महीना बीतते-बीतते 11 सितम्बर 1973 वह दिन आया जिसके बाद चीले के आधुनिक इतिहास का सबसे खूनी दौर शुरू हुआ। कहने की ज़रूरत नहीं कि मार्क्सवादी विज्ञान को गहराई से आत्मसात न कर पाने की कमी अलेन्दे के लिए व्यक्तियों की वर्गीय-सामाजिक भूमिका की सही पहचान कर पाने में भी बाधक बन गयी। नई सदी में जब मेहनतकशों की नयी पीढ़ी के हरावल विश्व सर्वहारा क्रान्तियों के नये चक्र के तूफ़ानों के बीच होंगे तो उन्हें पेरिस कम्यून से लेकर चीले तक के तमाम सबकों को कभी न भूलना होगा।

जनरल पिनोशे हिटलर-मुसोलिनी-जनरल तोजो और बतिस्ता-दुवालियर जैसे पूँजीवादी नरपिशाचों की ही बिरादरी का एक सदस्य था। बुश और ब्लेयरों के रूप में यह बिरादरी अभी धरती पर ज़िन्दा है। इन्हें विश्व इतिहास के अजायबघरों में पहुँचा देने के लिए अभी दुनिया की मेहनतकश जनता को खून और आग के दरिया से गुज़रकर जाना है। विश्व इतिहास ने इस बिरादरी के लिए वह जगह पहले से ही सुरक्षित कर रखी है जब आने वाली पीढ़ियाँ इनके थोबड़ों पर न केवल आश्चर्य से निगाह डालेंगी वरन उस पर पूरी नफ़रत के साथ थूकने से भी खुद को नहीं रोक पायेंगी।

नया वर्ष
नयी उम्मीदों,
नयी तैयारियों
नयी शुरुआतों के नाम,
पराजय की घड़ी में भी
विजय के स्वप्नों के नाम,
लगातार लड़ते रहने की
जिद के नाम,
संकल्पों के नाम
जीवन, संघर्ष और सृजन के नाम

स्तालिन के जन्मदिवस (21 दिसम्बर) के अवसर पर

लेनिनवादी पार्टी की मुख्य विशेषताएँ

जोसेफ स्तालिन सर्वहारा वर्ग के महान शिक्षक और नेता थे। स्तालिन ही थे जिनकी अगुवाई में दुनिया में पहली बार सोवियत संघ में उत्पादन के साधनों के समाजीकरण के काम को अंजाम दिया गया। स्तालिन के ही नेतृत्व में सोवियत जनता ने अपने दो करोड़ बेटे-बेटियों की बलि देकर और पूरे देश की भयंकर तबाही सहकर हिटलर की 200 डिवीजनों को धूल चटाई और फासीवाद से दुनिया की रक्षा की। उनके नेतृत्व में समाजवादी निर्माण का काम शानदार ढंग से आगे बढ़ा। समाजवादी संक्रमण की समस्याओं को समझने की शुरुआत करने में स्तालिन से देर हुई और कुछ सैद्धान्तिक गलतियाँ हुईं लेकिन समाजवाद के विरुद्ध भितरघातियों, गद्दारों, ढुलमुल तत्वों और साम्राज्यवादी एजेंटों के निरन्तर चलने वाले षड्यंत्रों से जूझते हुए स्तालिन समाजवाद के निर्माण को आगे बढ़ाते रहे। यही वजह है कि दुनिया भर के साम्राज्यवादी उनके विरुद्ध कुत्सा-प्रचार और झूठ का अंबार खड़ा करने में आज भी जुटे रहते हैं।

यहाँ हम 'बिगुल' के पाठकों के लिए स्तालिन की प्रसिद्ध पुस्तक 'लेनिनवाद के मूल सिद्धान्त' के पार्टी विषयक अध्याय के प्रमुख अंश प्रस्तुत कर रहे हैं। - **सम्पादक**

पार्टी

क्रान्ति के पूर्वकालीन, न्यूनाधिक शान्तिपूर्ण विकास वाले युग में मजदूर आन्दोलन में दूसरे इण्टरनेशनल की पार्टियों का ही बोलबाला था और पार्लियामेंट वाले ढंग ही उस समय संघर्ष के प्रधान साधन माने जाते थे। ऐसी अवस्था में पार्टी का न तो वह महत्व था और न हो सकता था जो उसने आगे चलकर खुले क्रान्तिकारी संघर्षों के युग में ग्रहण किया। दूसरे इण्टरनेशनल पर किये गये आक्षेपों का उत्तर देते हुए काउत्स्की ने कहा है कि उक्त इण्टरनेशनल की पार्टियाँ युद्ध का नहीं बल्कि शान्ति का अस्त्र थीं। इसीलिए युद्ध के काल में, अर्थात सर्वहारा वर्ग के क्रान्तिकारी संघर्ष के काल में, उनकी कोई महत्वपूर्ण भूमिका न हो सकी। काउत्स्की का कहना सही है। किन्तु इसका तात्पर्य क्या है? वह यह है कि दूसरे इण्टरनेशनल से सम्बन्धित पार्टियाँ सर्वहारा वर्ग के क्रान्तिकारी आन्दोलन को चलाने के सर्वथा अयोग्य थीं। वे मजदूर वर्ग की लड़ाकू पार्टियाँ न थीं जो राजसत्ता पर अधिकार करने संघर्ष में सर्वहारा वर्ग का नेतृत्व करतीं। बल्कि वे संसदीय चुनावों की और संसदवादी संघर्षों की लड़ाई लड़ने वाली केवल चुनाव समितियाँ थीं। यही कारण है कि जबतक दूसरे इण्टरनेशनल के अवसरवादियों का दौर था जबतक पार्टी नहीं बल्कि उसका संसदीय गुट ही मजदूर वर्ग का प्रधान राजनीतिक संगठन बना रहा। यह सर्वविदित है कि उन दिनों पार्टी संसदीय गुट का एक पुछल्ला बना दी गई थी और उसी की अधीनता में काम करती थी। कहने की आवश्यकता नहीं कि इन परिस्थितियों में और ऐसी पार्टी की अगुवाई में सर्वहारा वर्ग को क्रान्ति के लिए तैयार करने का प्रश्न भी नहीं उठ सकता था।

किन्तु नये युग के आरम्भ के साथ परिस्थिति में भारी परिवर्तन हो गया है। नया युग खुले वर्ग संघर्षों का युग है; यह सर्वहारा वर्ग के क्रान्तिकारी संघर्षों का और सर्वहारा क्रान्ति का युग है; यह एक ऐसा युग है जिसमें साम्राज्यवाद का उच्छेद करने के लिए तथा राजसत्ता पर सर्वहारा वर्ग का आधिपत्य स्थापित करने के लिए सेना को खुलेआम संगठित किया जा रहा है। इस युग में सर्वहारा वर्ग को सर्वथा नये कार्य करने हैं। पार्टी के समस्त कार्यों को उसे नये और क्रान्तिकारी ढंग से फिर से संगठित करना है। राजसत्ता पर अधिकार करने के लिए मजदूरों में क्रान्तिकारी संघर्ष की भावना का संचार करना है, अपनी कोतल शक्तियों को समेट कर आगे बढ़ना है तथा पड़ोसी देशों के सर्वहारा वर्ग के साथ और उपनिवेशों व पराधीन देशों के स्वाधीनता आन्दोलनों के साथ उसे सुदृढ़ सम्बन्ध स्थापित करना है। संसदवाद की शान्तिमय परिस्थितियों में पली हुई पुरानी सामाजिक जनवादी पार्टियों से इन नये कर्तव्यों के पूरा होने की आशा करना अपने को घोर निराशा और अनिवार्य पराजय के गर्त में डालना था। इन कर्तव्यों के सामने आ जाने पर भी यदि सर्वहारा वर्ग उन्हीं पुरानी पार्टियों के नेतृत्व को स्वीकार किये रहता तो वह पूरी तरह निरस्त्र बन जाता। कहने की आवश्यकता नहीं कि सर्वहारावर्ग इस परिस्थति से संतुष्ट नहीं हो सकता था।

इसलिए आवश्यकता पड़ी एक नयी पार्टी की, एक लड़ने वाली और क्रान्तिकारी पार्टी की, एक ऐसी साहसी पार्टी की जो राजसत्ता पर अधिकार करने के संघर्ष में सर्वहारा वर्ग का नेतृत्व कर सके, एक ऐसी अनुभवी पार्टी की जो क्रान्तिकारी परिस्थिति की अत्यन्त जटिल अवस्थाओं में भी अपना विवेक न खोए, एक ऐसी कार्यकुशल पार्टी की जो क्रान्ति के जहाज को पानी के अन्दर छुपी हुई चट्टानों से बचाकर उसको अपने लक्ष्य तक पहुँचा दे।

इस तरह की पार्टी के बिना साम्राज्यवाद का अन्त करने और सर्वहारा अधिनायकत्व की स्थापना करने की बात सोचना भी व्यर्थ होता।

यह नयी पार्टी है लेनिनवाद की पार्टी।

इस नयी पार्टी की मुख्य विशेषताएँ क्या हैं?

यह पार्टी मजदूर वर्ग का अग्रदल है

पार्टी को सर्वप्रथम मजदूर वर्ग का अग्रदल (हिरावल दस्ता) होना चाहिए। उसे मजदूर वर्ग के सर्वोत्तम लोगों को ग्रहण करना चाहिए और उसके अनुभव, उनकी क्रान्तिकारी क्षमता और अपने वर्ग की निःस्वार्थ सेवा की उनकी भावना का प्रतिनिधित्व करना चाहिए। किन्तु पार्टी वास्तव में अग्रदल तभी बन सकती है जब वह क्रान्तिकारी सिद्धान्त के अस्त्र से लैस हो और उसे आन्दोलन एवं क्रान्ति के नियमों का ज्ञान हो। ऐसा न होने से वह सर्वहारा आन्दोलन का संचालन और सर्वहारा क्रान्ति का नेतृत्व करने में समर्थ न हो सकेगी। मजदूर वर्ग का आम हिस्सा जो कुछ सोचता और अनुभव करता है, पार्टी का काम अगर उसे ही व्यक्त करने तक सीमित रहा, अगर पार्टी स्वतःस्फूर्त आन्दोलन की पूँछ बनकर उसके पीछे-पीछे घिसटती रही, अगर वह उक्त आन्दोलन की राजनीतिक उदासीनता और जड़ता को दूर करने में समर्थ न हुई, अगर वह मजदूर वर्ग के क्षणिक हितों के ऊपर न उठ सकी, और अगर वह जनता की चेतना को सर्वहारा के वर्गहितों के धरातल तक पहुँचाने में समर्थ न हुई तो फिर पार्टी एक वास्तविक पार्टी नहीं बन सकती। पार्टी को मजदूर वर्ग के आगे-आगे चलना चाहिए, मजदूर वर्ग से बहुत आगे तक देखना चाहिए और उसका नेतृत्व करना चाहिए, उसे स्वतःस्फूर्त आन्दोलन के पीछे-पीछे नहीं चलना चाहिए। "पिछलग्गूपन" का उपदेश देने वाली दूसरे इण्टरनेशनल की पार्टियाँ पूँजीवादी नीति की ही वाहक हैं और सर्वहारा वर्ग को पूँजीपतियों के हाथों की कठपुतली बना देने की कोशिश करती हैं। जो पार्टी सर्वहारा वर्ग के अग्रदल का काम करती हो, जो जनता की चेतना को सर्वहारा के वर्गहितों के धरातल तक पहुँचाने में समर्थ हो, सिर्फ वही पार्टी सर्वहारा वर्ग को "मजदूर सभावाद" के पथ से उबार कर उसे एक स्वतन्त्र राजनीतिक शक्ति में परिणत कर सकती है।

पार्टी मजदूर वर्ग की राजनीतिक नेता है।

मैंने मजदूर वर्ग के संघर्ष की कठिनाइयों का उल्लेख किया है। मैंने संघर्ष की कठिन परिस्थितियों का, रणनीति और कार्यनीति का, कोतल शक्तियों के उपयोग और पैंतरेबाजी का तथा आक्रमण और बचाव सम्बन्धी जटिल प्रश्नों का निर्देश किया है। ये परिस्थितियाँ यदि युद्ध की परिस्थितियों से अधिक पेचीदा नहीं तो उनसे कम पेचीदा भी नहीं हैं। इन पेचीदगियों के बीच रास्ता ढूँढ़ निकालने में और करोड़ों मजदूरों का नेतृत्व करने में कौन समर्थ हो सकता है? युद्ध में लगी हुई कोई भी सेना अपने अनुभवी सेनानायकों के बिना काम नहीं चला सकती; अगर वह ऐसा करे तो निश्चय ही उसकी हार होगी। तब क्या यह स्पष्ट नहीं है कि अपने सेनानायकों के बिना सर्वहारा वर्ग के लिए काम चलाना और भी कठिन है? अगर वह ऐसा करे तो निश्चय ही उसकी भी हार होगी। किन्तु ये सेनानायक कौन हैं? स्पष्ट है कि सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी ही सेनानायकों का स्थान ले सकती है। क्रान्तिकारी पार्टी के बिना मजदूर वर्ग की वही हालत होगी जो सेनानायकों के बिना किसी फौज की होती है।

पार्टी सर्वहारा वर्ग का सेनानायक है।

किन्तु पार्टी मजदूर वर्ग का केवल अग्रदल ही नहीं हो सकती, उसे अपने *वर्ग* का दस्ता, अपने वर्ग का एक अंग भी होना चाहिए और जीवन के प्रत्येक सूत्र से अपने वर्ग के साथ संबद्ध होना चाहिए, जब तक वर्गों का विलोप नहीं होता तब तक मजदूर वर्ग और उसके अग्रदल का, पार्टी सदस्यों और साधारण जनता का भी भेद नहीं मिट सकता। यह भेद तब तक बना रहेगा जब तक कि दूसरे वर्गों के लोग मजदूर श्रेणी में आकर मिलते रहेंगे और जब तक कि पूरे वर्ग की चेतना को अग्रदल की चेतना के धरातल तक पहुँचा देना सम्भव न हो जाएगा। किन्तु अगर यह भेद बढ़कर खाई का रूप धारण कर ले, साधारण जनता से सम्बन्ध तोड़कर पार्टी अपने ही खोल के भीतर सिमट कर बैठी रही, तो फिर पार्टी पार्टी न रह जाएगी। क्योंकि यदि उसका सम्बन्ध अपने से भिन्न जनता से (साधारण जनता से संपादक) न रहे, यदि साधारण जनता पार्टी का नेतृत्व न स्वीकार करे, यदि जनता के बीच पार्टी की नैतिक और राजनीतिक साख न हो, तो फिर पार्टी अपने वर्ग का नेतृत्व नहीं कर सकती।

हाल ही में मजदूरों की पाँत में से दो लाख नए सदस्य पार्टी में भर्ती किए गए हैं। इस सम्बन्ध में ध्यान देने की बात यह है कि ये लोग केवल अपने आप ही पार्टी में नहीं सम्मिलित हुए हैं, बल्कि उन्हें गैर-पार्टी मजदूर जनता ने भेजा है। पार्टी के लिए नए सदस्य चुनने में मजदूरों ने सक्रिय भाग लिया है। उनके समर्थन के बिना कोई भी नया सदस्य पार्टी में स्वीकृत नहीं किया गया। इससे सिद्ध होता है कि पार्टी में बाहर का, मजदूरों का विशाल जनसमूह हमारी पार्टी को *अपनी पार्टी* मानता है, उसे अपनी *प्रिय पार्टी* समझता है, उसकी प्रगति और संगठन में काफी दिलचस्पी लेता है और उसके हाथों में खुशी-खुशी अपना भाग्य सौंप देता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि गैर पार्टी जनता के साथ का पार्टी का सम्बन्ध जोड़ने वाले इन नैतिक सूत्रों के बिना पार्टी अपने वर्ग की निर्णयकारी शक्ति नहीं बन पाती।

पार्टी मजदूर वर्ग का अभिन्न अंग है।

लेनिन ने कहा है, "हम एक वर्ग की पार्टी हैं, इसलिए लगभग सम्पूर्ण वर्ग को (और युद्ध तथा गृहयुद्ध के समय में सम्पूर्ण वर्ग को) पार्टी के यथासम्भव निकट आकर उसके नेतृत्व में काम करना चाहिए। लेकिन यह समझना कि पूँजीवादी व्यवस्था में सम्पूर्ण वर्ग अथवा लगभग सम्पूर्ण वर्ग कभी भी अपने अग्रदल की, वर्ग सामाजिक जनवादी पार्टी की क्रियाशीलता तथा चेतना के स्तर तक पहुँच सकेगा, पिछलग्गूपन ("ख्वोस्तिज्म") और मन बहलाने का एक बहाना भर (मानिलोववाद अर्थात झूठा आत्मसंतोष) है। किसी भी समझदार सामाजिक जनवादी को इस बात में कभी संदेह नहीं हुआ कि पूँजीवादी व्यवस्था में ट्रेड यूनियन संगठन भी (जो ज्यादा पिछड़े हुए हैं और पिछड़े मजदूरों के ज्यादा नजदीक हैं) सम्पूर्ण अथवा लगभग सम्पूर्ण वर्ग को अपने भीतर नहीं ला सकते। यदि हम अग्रदल और उसकी ओर आकर्षित होने वाले जनसमूह का भेद भूल जाते हैं और उस अग्रदल के इस कर्तव्य को भूल जाते हैं कि वह अधिक से अधिक लोगों को उच्चतम धरातल पर लाने की चेष्टा करे तो हम अपने को धोखा देते हैं, अपने कार्यों की महत्ता को आँखों से ओझल कर देते हैं और अपने कार्यों को अत्यन्त संकुचित बना देते हैं।" (लेनिन, **एक कदम आगे, दो कदम पीछे, ग्रन्थावली,** खण्ड 4, पृ. 205-06)

पार्टी मजदूर वर्ग का संगठित दस्ता है

पार्टी मजदूर वर्ग का केवल *अग्रदल* ही नहीं है। यदि वह अपने वर्ग के संघर्षों का वास्तविक संचालन करना चाहती है तो उसे सर्वहारा का *संगठित* दस्ता भी होना पड़ेगा, पूँजीवाद की परिस्थितियों में पार्टी के कार्य अत्यन्त गंभीर और विविध हैं। भीतरी और बाहरी विकास की अत्यन्त कठिन परिस्थितियों में उसे सर्वहारा वर्ग के संघर्षों का नेतृत्व करना होगा। जब परिस्थिति आक्रमण के अनुकूल हो तब उसे अपने वर्ग को लेकर चढ़ाई करनी होगी; और जब स्थिति प्रतिकूल हो जाए तो शक्तिशाली दुश्मन के प्रहार से उसे बचाने के लिए अपने वर्ग को पीछे हटा लाना होगा। साथ ही पार्टी के बाहर के करोड़ों असंगठित मजदूरों को संघर्ष का ढंग और अनुशासन सिखलाना होगा और उनमें संगठन और सहनशीलता की भावना उत्पन्न करनी होगी। पार्टी यह सब काम तभी पूरा कर सकती है जब वह स्वयं संगठन और अनुशासन का आदर्श रूप हो, जब वह स्वयं सर्वहारा वर्ग का *संगठित* दस्ता हो। पार्टी में अगर ये गुण न हों तो वह करोड़ों सर्वहारा का पथ प्रदर्शन करने की बात भी नहीं सोच सकती।

पार्टी मजदूर वर्ग का संगठित दस्ता है।

पार्टी नियमावली के पहले अनुच्छेद में ही लेनिन का यह सर्वप्रसिद्ध सिद्धान्त विद्यमान है कि पार्टी को एक संगठित इकाई होना चाहिए। उक्त अनुच्छेद में पार्टी को अपने विभिन्न संगठनों का योगफल माना गया है और कहा गया है कि इनमें से किसी संगठन का सदस्य ही पार्टी का सदस्य हो सकता है। मेंशेविकों ने 1903 में ही लेनिन के इस सिद्धान्त का विरोध किया था और एक संशोधन द्वारा उसकी जगह यह विधान करना चाहा था कि पार्टी में स्वयं भर्ती होने की "व्यवस्था" हो; और ऐसे प्रत्येक "प्रोफेसर" और "हाईस्कूल के विद्यार्थी" को, प्रत्येक "हमदर्द" और "हड़ताली" को पार्टी सदस्यता की "पदवी" दी जाए जो किसी भी तरह से पार्टी का समर्थन करता हो, उनका कहना था कि पार्टी के प्रत्येक सदस्य के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह पार्टी के मातहत किसी न किसी संगठन में काम करता हो या करने के लिए उत्सुक हो। यह प्रमाणित करने की आवश्यकता नहीं है कि यदि पार्टी के अन्दर यह अनोखी "व्यवस्था" प्रतिष्ठित हो जाती तो उसमें प्रोफेसरों और हाईस्कूल के विद्यार्थियों की बाढ़ सी आ जाती और "हमदर्दों" के समुद्र में डूबती-उतराती हमारी पार्टी अपने आदर्श से स्खलित होकर एक ढीला-ढाला, असंगठित और शृंखलाहीन "ढाँचा" बनकर रह जाती। इस हालात में पार्टी और मजदूर वर्ग के बीच का अन्तर मिट जाता और असंगठित जनसाधारण को अग्रदल के स्तर तक उठाने का पार्टी का उद्देश्य ही छिन्न-भिन्न हो जाता। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस तरह की अवसरवादी "व्यवस्था" में हमारी पार्टी क्रान्ति के दौरान सर्वहारा वर्ग का संगठन केन्द्र बनने का कार्य न कर पाती।

इस सम्बन्ध में लेनिन ने लिखा था, "मार्तोव के दृष्टिकोण से पार्टी की सीमाएँ अनिश्चित हैं क्योंकि उनके अनुसार 'प्रत्येक हड़ताली... अपने को पार्टी का सदस्य घोषित' कर सकता है। इस लचीलेपन से क्या लाभ हो सकता है? उनका कहना है कि इससे पार्टी के 'नाम' का दूर-दूर तक प्रचार हो जायेगा। किन्तु इस व्यवस्था से बहुत भारी हानि होगी। पार्टी और वर्ग का भेद अस्पष्ट हो जायेगा

(पेज 11 पर जारी)

माओ त्से-तुङ के जन्मदिवस (26 दिसम्बर) के अवसर पर

माओ त्से-तुङ सिर्फ चीनी जनता के लम्बे क्रान्तिकारी संघर्ष के बाद लोक गणराज्य के संस्थापक और समाजवाद के निर्माता ही नहीं थे, मार्क्स और लेनिन के बाद वे सर्वहारा क्रान्ति के सबसे बड़े सिद्धान्तकार और हमारे समय पर अमिट छाप छोड़ने वाले एक महानतम क्रान्तिकारी थे।

माओ-त्से-तुङ ने चीन में रूस से अलग समाजवाद के निर्माण की नयी राह चुनी और उद्योगों के साथ ही कृषि के समाजवादी विकास पर तथा गाँवों और शहरों का अन्तर मिटाने पर भी विशेष ध्यान दिया। आम जन की सर्जनात्मकता और पहलकदमी के दम पर बिना किसी बाहरी मदद के साम्राज्यवादी घेरेबन्दी के बीच उन्होंने अकाल, भुखमरी और अफीमचियों के देश चीन में विज्ञान और तकनोलाजी के विकास के नये कीर्तिमान स्थापित कर दिये, शिक्षा और स्वास्थ्य को समान रूप से सर्वसुलभ बना दिया, उद्योगों के निजी स्वामित्व को समाप्त करके उन्हें सर्वहारा राज्य के स्वामित्व में सौंप दिया और कृषि के क्षेत्र में कम्यूनों की स्थापना की। इस अभूतपूर्व सामाजिक प्रगति से चकित-विस्मित पश्चिमी अध्येताओं तक ने चीन की सामाजिक-आर्थिक प्रगति और समतामूलक सामाजिक ढाँचे पर सैकड़ों पुस्तकें लिखीं।

स्तालिन की मृत्यु के बाद सोवियत संघ में जब ख्रुश्चेव के नेतृत्व में एक नये किस्म का पूँजीपति वर्ग सत्तासीन हो गया तो उसके नकली कम्युनिज्म के खिलाफ संघर्ष चलाते हुए माओ ने मार्क्सवाद को और आगे विकसित किया। पहली बार माओ ने रूस और चीन के अनुभवों के आधार पर यह स्पष्ट किया कि समाजवाद के भीतर से पैदा होने वाले पूँजीवादी तत्व किस प्रकार मजबूत होकर सत्ता पर कब्जा कर लेते हैं। उन्होंने इन तत्वों के पैदा होने के आधारों को नष्ट करने के लिए सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति का सिद्धान्त प्रस्तुत किया और चीन में 1966 से 1976 तक इसे सामाजिक प्रयोग में भी उतारा। यह माओ त्से-तुङ का महानतम सैद्धान्तिक अवदान है।

1976 में माओ की मृत्यु के बाद चीन में भी देड़ सियाओ-पिङ के नेतृत्व में पूँजीवादी पथगामी सत्ता पर काबिज होने में कामयाब हो गये, क्योंकि पिछड़े हुए चीनी समाज के छोटी-छोटी निजी मिलाकियतों वाले ढाँचे में समाजवाद आने के बाद भी पूँजीवाद का मजबूत आधार और बीज मौजूद थे। लेकिन पूँजीवाद की राह पर नंगे होकर दौड़ रहे चीन के नये पूँजीवादी सत्ताधारी आज भी चैन की साँस नहीं ले सके हैं। माओ की विरासत को लेकर चलने वाले लोग आज भी वहाँ मौजूद हैं और संघर्षरत हैं।

आज से 40 वर्षों पहले 1962 में माओ त्से-तुङ ने भविष्य के बारे में जो आंकलन प्रस्तुत किया था, ऐतिहासिक रूप से वह आज भी सही है : *"अब से लेकर अगले पचास से सौ वर्षों तक का युग एक ऐसा महान युग होगा जिसमें दुनिया की सामाजिक व्यवस्था बुनियादी तौर पर बदल जायेगी। यह एक ऐसा भूकम्पकारी युग होगा जिसकी तुलना इतिहास के पिछले किसी भी युग से नहीं की जा सकेगी। एक ऐसे युग में रहते हुए हमें उन महान संघर्षों में जूझने के लिए तैयार रहना चाहिए, जो अपनी विशेषताओं में अतीत के तमाम संघर्षों से कई मायनों में भिन्न होंगे।"*

कम्युनिस्टों को हर समय सच्चाई का पक्षपोषण करने के लिए तैयार रहना चाहिए क्योंकि हर सच्चाई जनता के हित में होती है; कम्युनिस्टों को हर समय अपनी गलतियाँ सुधारने के लिए तैयार रहना चाहिए क्योंकि गलतियाँ जनता के हितों के विरुद्ध होती हैं।

माओ त्से-तुङ, "मिलीजुली सरकार के बारे में" (24 अप्रैल 1945)

कम्युनिस्टों को चाहिए कि वे सबसे ज्यादा दूरदर्शी बनें; आत्म-बलिदान के लिए सबसे ज्यादा तत्पर रहें, सबसे ज्यादा दृढ़ बनें, तथा स्थिति को आंकने में पूर्वधारणाओं से तनिक भी काम न लें, और बहुसंख्यक आम जनता पर भरोसा रखें और उसका समर्थन प्राप्त करें।

माओ त्से-तुङ, "जापानी-आक्रमण-विरोधी काल में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के कर्तव्य" (3 मई 1937)

हम कम्युनिस्ट बीज के समान होते हैं और जनता भूमि के समान होती है। हम लोग जहाँ कहीं भी जाएँ, वहाँ जनता के साथ एकता कायम करें, उसमें अपनी जड़ें जमा लें, और उसके बीच फलें-फूलें।

माओ त्से-तुङ, "छुङकिङ समझौता-वार्ता के बारे में" (17 अक्टूबर 1945)

हम कम्युनिस्टों में यह क्षमता अवश्य होनी चाहिए कि हम सभी बातों में अपने को आम जनता के साथ एकरूप कर सकें। अगर हमारे पार्टी-सदस्य बन्द कमरे में बैठे रहकर सारी ज़िन्दगी गुजार दें और दुनिया का सामना करने व तूफान का मुकाबला करने के लिए कभी बाहर ही न निकलें, तो चीनी जनता को उसे क्या फायदा होगा? रत्तीभर भी नहीं, और इस तरह के पार्टी-सदस्य हमें नहीं चाहिए। हम कम्युनिस्टों को दुनिया का सामना करना चाहिए और तूफान का मुकाबला करना चाहिए; यह दुनिया जन-संघर्षों की विशाल दुनिया है तथा यह तूफान जन-संघर्षों का जबरदस्त तूफान है।

माओ त्से-तुङ, "संगठित हो जाओ !" (29 नवम्बर 1943)

एक कम्युनिस्ट को हठधर्मी नहीं होना चाहिए, और न ही उसे दूसरों पर रोब जमाने की कोशिश करनी चाहिए, उसे ऐसा हरगिज नहीं समझना चाहिए कि वह खुद तो हर चीज का माहिर है और दूसरों को कतई कुछ भी नहीं आता; उसे अपने अन्दर बन्द नहीं कर लेना चाहिए, या अपने मुँह मियां मिट्ठू बनने तथा शेखी बघारने की कोशिश नहीं करनी चाहिए, और न ही दूसरों पर सवारी गाँठने की कोशिश करनी चाहिए।

माओ त्से-तुङ, "शेनशी-कानसू-निङ्या सीमान्त क्षेत्र की प्रतिनिधि-सभा में भाषण" (21 नवम्बर 1941)

लेनिनवादी पार्टी की मुख्य विशेषताएँ

(पेज 10 से आगे)

जिससे पार्टी के अन्दर विघटन का घुन लग जायेगा।" (लेनिन **ग्रन्थावली,** खण्ड 6, पृ. 211)

किन्तु पार्टी अपने नीचे के संगठनों का केवल *योगफल* ही नहीं है; वह उन संगठनों की एकरस *व्यवस्था* को भी व्यक्त करती है। वह विभिन्न पार्टी संगठनों की नियमित एकता का केन्द्र है। उसके साथ वे अभिन्न रूप से बँधे हुए हैं, पार्टी के भीतर नेतृत्व की ऊँची और नीची समितियाँ हैं, उसके अन्दर अल्पमत को बहुत के आगे सिर झुकाना पड़ता है और बहुमत के व्यावहारिक निर्णय सभी पार्टी सदस्यों के लिए मान्य होते हैं। इन लक्षणों के अभाव में पार्टी एक एकरस, संगठित और सम्पूर्ण संस्था नहीं बन सकती और न वह मजदूर वर्ग के संघर्ष का व्यवस्थित और संगठित रूप से नेतृत्व करने में ही समर्थ हो सकती है।

लेनिन ने कहा है, "पहले हमारी पार्टी एक नियमपूर्वक संगठित दल न होकर विभिन्न गुटों का जोड़ थी; इसलिए इन गुटों में विचार साम्य को छोड़कर और कोई सम्बन्ध न था। अब हम एक संगठित पार्टी हैं जिसका अर्थ है *अब* हम अनुशासन सूत्र में बँध गए हैं। विचारों की शक्ति अनुशासन में बदल गई है। पार्टी की निम्न संस्थाओं को उच्चतर संस्थाओं के आदेशों को मानना पड़ता है।" (वही, पृ. 291)

अल्पमत का बहुत से अनुशासित होने तथा एक केन्द्र द्वारा पार्टी कार्य का संचालन करने के सिद्धान्तों को लेकर ढीले-ढाले और अस्थिर विचार के लोग पार्टी को "नौकरशाहों" का और 'औपचारिकतावादी' संगठन बतलाते हैं। यह सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है कि इन सिद्धान्तों का पालन किए बिना पार्टी न तो एक संगठित संस्था के रूप में और व्यवस्थित ढंग से अपना कार्य कर सकती है और न मजदूर वर्ग के संघर्षों का ही संचालन कर पाती है। संगठन के क्षेत्र में लेनिनवाद का तात्पर्य है इन सिद्धान्तों का दृढ़तापूर्वक प्रयोग करना। इन सिद्धान्तों के विरोध को लेनिन ने "रूसी नकारवाद" और "राजसी अराजकतावाद" का नाम दिया था। वास्तव में इस तरह का विरोध मात्र उपहास की चीज हैं और उसे हमें तिरस्कारपूर्वक ठुकरा देना चाहिए।

एक कदम आगे दो कदम पीछे नामक अपनी पुस्तक में लेनिन ने इन ढुलमुल विचार वाले लोगों के सम्बन्ध में ये बातें लिखी हैं, "यह राजसी अराजकतावाद रूसी निहिलिस्टों (नकारवादियों) की विशेषता है। पार्टी संगठन को वे भयानक 'फैक्टरी' समझते हैं; उनके विचार से पार्टी के विभिन्न अंगों का तथा अल्पमत का पूरी पार्टी से अनुशासित होना 'दासता' है। कुछ करुणा और कुछ हास्यास्पद स्वर में वे केन्द्र की देखरेख में काम के बँटवारे के सम्बन्ध में कहते हैं कि उससे लोग मशीन के 'कल पुर्जे' बन जाते हैं... पार्टी के संगठन सम्बन्धी नियमों पर वे मुँह बिचकाते हैं और बड़ी घृणा से... कहते हैं कि बिना नियम के ही काम चल सकता है।

मेरा ख्याल है कि तथाकथित नौकरशाही की बात करके ये लोग जो हायतौबा मचाया करते हैं वह स्पष्टतः केन्द्रीय संस्थाओं के सदस्यों के प्रति अपने असंतोष को ढँके रखने का केवल एक बहाना है... तुम नौकरशाह हो, क्योंकि पार्टी कांग्रेस ने तुम्हें मेरी इच्छाओं के अनुसार नहीं बल्कि उनके विरुद्ध नियुक्त कर दिया है। तुम नियमवादी हो, क्योंकि तुम मेरी सहमति की परवाह न करके कांग्रेस के नियमित निर्णयों को मानते हो! तुम एक जड़ के समान काम करते हो, क्योंकि केन्द्रीय संस्थाओं में सम्मिलत होने के सम्बन्ध में मेरी निजी इच्छाओं की ओर ध्यान न देकर तुम पार्टी कांग्रेस के 'यांत्रिक' बहुमत के आदेशों को ही प्रमाणिक मानते हो! तुम निरंकुश हो, क्योंकि तुम पुराने गुटों को (यहाँ ऐक्सेलराड, मार्तोव, पोत्रेसोव आदि का जिक्र किया गया है। उन्होंने दूसरी कांग्रेस के निर्णयों को मानने से इन्कार कर दिया और लेनिन पर "नौकरशाह" होने का आरोप लगाया) पार्टी संचालन का अधिकार देने के विरुद्ध हो!" (लेनिन, **ग्रन्थावली,** खण्ड 10, पृ. 280, 310)

पार्टी सर्वहारा के वर्ग संगठन का उच्चतम रूप है

पार्टी मजदूर वर्ग का संगठित दस्ता है। किन्तु वह अपने वर्ग का अकेला संगठन नहीं है। सर्वहारा के कितने ही अन्य संगठन भी हैं जिनके बिना वह पूँजीवाद के खिलाफ ठीक से संघर्ष नहीं कर सकती। ये संगठन हैं मजदूर सभाएँ, सहयोग समितियाँ, मिलों और कारखानों के संगठन, संसदीय ग्रुप, पार्टी के बाहर स्त्रियों के संगठन, प्रकाशन सम्बन्धी, सांस्कृतिक और शिक्षा सम्बन्धी संगठन, युवा संघ, क्रान्तिकारी संघर्ष के दिनों में लड़ने वाले क्रान्तिकारी संगठन, अगर राजसत्ता पर सर्वहारा वर्ग का अधिकार हो तो शासन व्यवस्था से सम्बन्धित संगठनों के रूप में जनप्रतिनिधियों के सोवियत आदि-आदि। इनमें से अधिकांश संगठन गैर-पार्टी हैं और उनमें से कुछ ही प्रत्यक्ष रूप से पार्टी का अनुसरण करते हैं या उससे संबद्ध हैं। किन्हीं विशेष परिस्थितियों में मजदूर वर्ग को इन सभी संगठनों की आवश्यकता होती है, क्योंकि उनके बिना संघर्ष के विभिन्न क्षेत्रों में सर्वहारा की वर्ग स्थिति को दृढ़ करना सम्भव नहीं होता और न पूँजीवादी व्यवस्था की जगह समाजवादी व्यवस्था स्थापित करने का अपना ऐतिहासिक कर्तव्य पूरा करने के लिए सर्वहारा वर्ग में वह क्रान्तिकारी क्षमता ही आ सकती है। किन्तु इतने विभिन्न प्रकार के संगठनों के रहते हुए एकरस नेतृत्व की स्थापना कैसे हो सकती है? इसकी क्या गारंटी है कि संगठनों की यह अनेकता नेतृत्व में में भी विभिन्नता नहीं उत्पन्न कर देगी? कहा जा सकता है कि इनमें से प्रत्येक संगठन अपने विशेष क्षेत्र में ही काम करता है, अतः वह दूसरे के काम में बाधा नहीं बन सकता। यह कहना सही है। लेकिन यह भी तो सही है कि इन सभी संगठनों को एक ही दिशा में काम करना चाहिए क्योंकि उन सबका उद्देश्य एक ही वर्ग की, सर्वहारा वर्ग की सेवा करना है। तब प्रश्न उठता है कि इन विभिन्न संगठनों के कार्य की दिशा, उनकी नीति कौन निर्धारित करेगा? वह केन्द्रीय संगठन कहाँ है जो न केवल अपने आवश्यक अनुभव के कारण एक सामान्य नीति निर्धारित करने की क्षमता रखता है, बल्कि जो अपनी पर्याप्त प्रतिष्ठा के कारण अन्य संगठनों से भी इसपर अमल करा सकता है और इस प्रकार परस्परविरोधी दिशा में काम करने की संभावना को दूर करके नेतृत्व की एकता को स्थापित कर सकता है?

सर्वहारा वर्ग की पार्टी ही यह संगठन है।

पार्टी के पास ये सभी आवश्यक गुण हैं, क्योंकि पहले तो वह मजदूर वर्ग के उन सर्वश्रेष्ठ लोगों को अपने अन्दर एकत्र करती है जिनका सर्वहारा वर्ग के गैरपार्टी संगठनों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है और जो प्रायः उनका नेतृत्व भी करते हैं, दूसरे मजदूर वर्ग के सर्वश्रेष्ठ लोगों के एकत्रीकरण का केन्द्र होने के कारण पार्टी उस वर्ग के नेताओं की शिक्षा की भी सबसे अच्छी जगह है और मजदूरों के हर तरह के संगठन का मार्गदर्शन करने में समर्थ है। तीसरे, मजदूर वर्ग के नेताओं की शिक्षा की सबसे अच्छी जगह होने के कारण और अपने अनुभव तथा प्रतिष्ठा के भी कारण पार्टी ही वह एकमात्र संगठन है जो सर्वहारा संघर्ष के नेतृत्व को केन्द्रित कर सकती है और इस प्रकार मजदूर वर्ग के प्रत्येक और अनेक गैरपार्टी संगठनों को अपना सहायक बना सकती है और उन्हें अपने वर्ग के साथ सम्बन्ध जोड़ने वाले सूत्र का रूप दे सकती है।

पार्टी सर्वहारा के वर्ग संगठन का उच्चतम रूप है।

इसका यह कदापि तात्पर्य नहीं है कि पार्टी के बाहर के मजदूर संगठनों, मजदूर सभाओं, सहयोग समितियों आदि को नियमतः पार्टी के अधीन बना देना चाहिए। इसका अर्थ सिर्फ यह है कि पार्टी के जो सदस्य इन संगठनों में काम करते हैं और निस्संदेह वे इन संगठनों पर प्रभाव भी रखते हैं उन्हें भरसक प्रयत्न करना चाहिए कि अपने कार्य में ये गैर-पार्टी संगठन सर्वहारा वर्ग की पार्टी के निकट खिंच आयें और उसके राजनीतिक नेतृत्व को स्वेच्छापूर्वक स्वीकार करें।

इसीलिए लेनिन का कहना है कि "पार्टी सर्वहारा जनसमूह के वर्ग संगठन का उच्चतम रूप है और सर्वहारा संगठन के अन्य सभी रूपों पर उसका राजनीतिक नेतृत्व होना चाहिए" (लेनिन, **"वामपंथी" कम्युनिज्म : एक बचकाना मर्ज, ग्रन्थावली,** खण्ड 10, पृ. 91)।

इसलिए गैर-पार्टी संगठन की "स्वाधीनता" और "तटस्थता" का प्रचार करने वाला सिद्धान्त निरा अवसरवादी है और लेनिन के सिद्धान्त और व्यवहार के सर्वथा प्रतिकूल है। इस अवसरवादी सिद्धान्त को मानकर चलने से संसद के *स्वतन्त्र* विचार वाले सदस्य, पार्टी से *अलग-थलग रहने वाले* पत्रकार, मजदूर सभाओं के *कूपमण्डूक* नेता तथा सहयोग समितियों के जड़ और *अधकचरे* किरानी जैसे विविध जंतु मजदूर वर्ग में पैदा होते हैं, लेनिनवादी पार्टी को इनकी कोई आवश्यकता नहीं है।

●

ये कंकाल एक धनपशु के घर से नहीं, पूँजीवादी व्यवस्था की आलमारी से बरामद हुए हैं!

नोएडा में ग़रीब मेहनतकशों के बच्चों की नृशंस हत्या का मामला

(पेज 1 से आगे)

भगा दिया जाता था। कुछ लोगों ने सेक्टर 31 के बंगले के प्रति संदेह भी जाहिर किया था, लेकिन जाँच करने के बजाय पुलिस ने उन्हें ही डाँट-फटकारकर भगा दिया।

निठारी गाँव की बर्बर घटना पूँजीवादी समाज की मनोरोगी संस्कृति का एक प्रतिनिधि उदाहरण है। धनपशुओं का जो समाज मेहनतकशों की हड्डियों का पाउडर बनाकर भी बेच सकता है और मुनाफ़ा कमा सकता है, वह आज बर्बर विलासी मनोरोगियों का एक वहशी गिरोह बन चुका है। उस समाज में मोहिंदर जैसे नरभक्षियों की मौजूदगी कोई आश्चर्य की बात नहीं है। यह घटना पूँजीवादी समाज की रुग्णता को उजागर करने वाली एक प्रतीक घटना है।

इस घटना ने इस सच्चाई को एक बार फिर बेपर्दा कर दिया है कि इस व्यवस्था में ग़रीबों और उनके बच्चों की ज़िन्दगी का कोई मोल नहीं है और सरकार, पुलिस या न्यायपालिका से आम आदमी इंसाफ पाने की रंचमात्र भी उम्मीद नहीं रख सकता। पिछले दिनों जब नोएडा के ही एक बहुराष्ट्रीय कम्पनी के करोड़पति अफसर का बच्चा अगवा हुआ तो पूरे प्रशासन में खलबली मच गयी, केन्द्रीय मंत्रियों तक ने चिन्ता प्रकट करते हुए बयान दिये, उत्तर प्रदेश सरकार के प्रतिनिधि अमर सिंह ने उस अफसर के घर जाकर संवेदना प्रकट की और चन्द दिनों के भीतर ही पुलिस के बच्चे को बरामद कर लिया। लेकिन दो वर्षों में ग़रीबों के 98 बच्चे घरों से ग़ायब हो गये और कहीं कोई सुगबुगाहट नहीं हुई। मोहिंदर के कुकर्म के सामने आने के बाद ग़ायब बच्चों के क्रुद्ध अभिभावकों और उनके पड़ोसी मज़दूरों ने जब मोहिंदर के घर पर पथराव किया तो पुलिस ने पूरी मुस्तैदी के साथ, पहली तारीख को, कानून व्यवस्था बनाये रखने के नाम पर उन पर बेरहम ढंग से लाठियाँ बरसाईं। यह व्यवस्था की ओर से आम मेहनतकशों को नये साल का ''तोहफ़ा'' था!

फिलहाल टी.वी. के सभी चैनल नये साल के जश्नों की ख़बरों के बीच निठारी की घटना को भी एक सनसनी के रूप में बेचने-भुनाने में मशगूल हैं। कानूनी कार्रवाई की रस्म अदायगी जारी है। ज़ाहिर है, कि कई वर्षों की लम्बी अदालती कार्रवाई के बाद ''पर्याप्त साक्ष्यों के अभाव में'' मोहिंदर के बेदाग़ बरी हो जाने की ही संभावना अधिक है। और एक मोहिंदर को यदि सज़ा मिल भी गयी तो यह व्यवस्था लगातार नये-नये मोहिंदर पैदा करती रहेगी। इस रोगी पूँजीवादी समाज में मोहिंदर जैसों की कमी नहीं है। अंततः इन वहशी भेड़ियों का शिकार ग़रीब आम मेहनतकशों के बच्चों को ही बनना है, चाहे वे इस रूप में बनें या उस रूप में। इस पूँजीवादी समाज में कानून और न्याय व्यवस्था से आम लोग कुछ भी उम्मीद नहीं कर सकते।

निठारी की लोमहर्षक घटना ने एक बार फिर साबित कर दिया है कि शोषित-उत्पीड़ित लोगों के सामने इस पूँजीवादी सामाजिक ढाँचे की ईंट से ईंट बजा देने के अतिरिक्त दूसरा कोई भी रास्ता बाकी नहीं बचा है। बस एक ही रास्ता है और वह है विद्रोह का रास्ता। बस, विद्रोह ही एक न्यायसंगत कर्म है। आम मेहनतकशों को सड़कों पर उतरना ही होगा। यह आदमी के रूप में ज़िन्दा रहने की शर्त बन गयी है। निठारी की घटना गुलामी का दण्ड है, पूँजीवादी समाज के चरम मानवद्रोही चरित्र का एक प्रतिनिधि प्रमाण है। निठारी के बच्चों की नरबलि हमारे विवेक और संवेदना के दरवाज़ों पर लगातार दस्तक देती रहेगी और हमें इस व्यवस्था को धूल में मिला देने के लिए ललकारती रहेगी।

सद्दाम को फाँसी : बर्बरों का न्याय

(पेज 1 से आगे)

से उसकी पीठ पर खड़े थे। अस्सी के दशक में जब अमेरिका ईरान को सबसे बड़ी चुनौती के रूप में देख रहा था, उस समय, ईरान-इराक युद्ध के दौरान, तीसरी दुनिया के दो देशों के बुर्जुआ शासक वर्गों की क्षेत्रीय विस्तारवादी महत्वाकांक्षाओं एवं हितों के आपसी टकराव का लाभ उठाकर अपना उल्लू सीधा करने के लिए अमेरिका ने इराक को अपने मोहरे की तरह इस्तेमाल किया और ईरान-इराक युद्ध में इराक की भरपूर मदद की। लेकिन युद्ध के बाद, अपनी राजनीतिक स्वतंत्रता-सम्प्रभुता का इजहार करते हुए, सद्दाम ने जब अपनी ध्वस्त अर्थव्यवस्था को ठीक करने के लिए तेल की कीमतों में वृद्धि की घोषणा की तथा फिलिस्तीनी जनता की मुक्ति के प्रति अपने खुले समर्थन के साथ ही व्यापक अरब एकता की बात की, तो फिर तुरन्त वह अमेरिकी आँखों में शूल की तरह चुभने लगा। कुवैत पर इराकी हमले ने अमेरिका को यह अवसर दे दिया कि वह सद्दाम हुसैन को सबक सिखाये और पहले खाड़ी युद्ध के दौरान मौजूदा राष्ट्रपति के बाप, बुश सीनियर की सत्ता ने ऐसा ही किया। कुवैत पर हमला निश्चय ही सद्दाम की क्षेत्रीय विस्तारवादी महत्वाकांक्षा का परिणाम था, लेकिन इस बात को भी याद रखना होगा कि कुवैत के शेखों-शाहों की घोर जनविरोधी सत्ता हमेशा से अमेरिकी साम्राज्यवादियों की पिट्ठू रही है और सीमावर्ती तेल-कूपों के जरिए इराकी तेल चुराकर, लगातार एक लम्बे समय से वह इराक के विरुद्ध उकसावे की कार्रवाई में लगी हुई थी। दरअसल, अमेरिका किसी भी तरह से इराक को सबक सिखाने की फिराक में था और कुवैती उकसावे की कार्रवाइयाँ उसी की राह पर हो रही थीं।

आज यह सच्चाई दिन के उजाले की तरह साफ है कि अरब धरती शुरू से ही अपनी अकूत तेल-सम्पदा के चलते ही साम्राज्यवादी दखलंदाज़ियों का शिकार रही है। साम्राज्यवादी षड्यंत्रों की मुख्य सूत्रधार पहले ब्रिटेन और अन्य यूरोपीय शक्तियाँ थी। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद, इसकी बागडोर मुख्यतः अमेरिका के हाथों में रही है। चाहे फिलिस्तीन और लेबनान का सवाल हो या ईरान और इराक का, अमेरिका का असली मक़सद हमेशा से ही अरब देशों में बुर्जुआ शासक वर्गों के आपसी अन्तरविरोधों को उकसाकर, उनमें से कुछ (शेखों-शाहों की निरंकुश सत्ताओं को) को अपना पिट्ठू बनाकर तथा शेष को आर्थिक-राजनीतिक-सामरिक दबावों-घेरेबंदियों के बल पर झुकाकर, अकूत तेल सम्पदा पर अमेरिकी कम्पनियों का एकाधिकार कायम करना रहा है। इराक पर अमेरिकी हमले और वहाँ एक कठपुतली सत्ता की स्थापना का मूल उद्देश्य भी यही था।

सद्दाम को फाँसी की सज़ा एक भेड़िये के न्याय से अधिक कुछ भी नहीं है। यदि कुछ हज़ार लोगों को मौत के घाट उतारने के कथित आरोप में सद्दाम को फाँसी की सज़ा दी गयी तो दस लाख इराकियों के नरसंहार के लिए ज़िम्मेदार जार्ज बुश को तो कई बार फाँसी के फन्दे से झुलाना चाहिए! दूसरे विश्वयुद्ध के बाद पूरी दुनिया में बतिस्ता, मार्कोस, पिनोशे, दुवालियर, सुहार्तो जैसे जितने भी सैनिक तानाशाहों ने अपने देशों में कई नरसंहार और बर्बर अत्याचार किये, वे सभी अमेरिकी कठपुतली थे। इस्रायल फिलिस्तीनी जनता पर आधी सदी से जो कहर बरपा कर रहा है, वह अमेरिकी मदद से ही सम्भव हो सकता है। खुद अमेरिका के भीतर अश्वेतों, आप्रवासियों और सत्ता-विरोधियों पर जो अत्याचार होते रहे हैं, उनके लिए अमेरिकी शासक वर्ग को सज़ा कौन सुनायेगा?

सद्दाम हुसैन पर मुकद्दमा पूरी दुनिया के इतिहास में न्याय का माख़ौल उड़ाने वाली सबसे बड़ी घटनाओं में से एक था। यह मुकदमा किसी अन्तरराष्ट्रीय ट्रिब्यूनल ने नहीं बल्कि कठपुतली जजों के एक बेंच ने सुनाया। इन जजों की नियुक्ति एक ऐसी सरकार ने की थी जिसे एक ऐसे चुनावी प्रहसन के बाद चुना गया था जिसमें देश की बहुसंख्यक आबादी ने हिस्सा नहीं लिया। इस सरकार के हाथ में आन्तरिक प्रशासन का भी कोई अधिकार नहीं है। पूरा प्रशासन वस्तुतः अमेरिकी सेना के हाथों में है। जजों की बेंच के जिन दो जजों से फाँसी की सज़ा पर मुहर लगाने की उम्मीद नहीं थी, उन्हें बदल दिया गया। सद्दाम के एक वकील को गोली मार दी गयी और कई क़ानूनी सलाहकारों को इराक जाने का वीज़ा तक नहीं दिया गया। ग़ौरतबल यह भी है कि इराक की कठपुतली सरकार के (कुर्द मूल के) राष्ट्रपति ने फाँसी के हुक्मनामे पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया। इन सबके बावजूद, आनन-फानन सद्दाम को फाँसी दे दी गयी।

इराक पर हमले के पीछे अमेरिका का सबसे बड़ा तर्क यह था कि सद्दाम की सत्ता के पास सामूहिक विनाश के रासायनिक हथियारों का जखीरा है और वह नाभिकीय शस्त्रास्त्रों के विकास में लगी हुई है। लेकिन अन्तरराष्ट्रीय टीमों से लेकर अमेरिका सेना तक, तमाम कोशिशों के बावजूद, आज तक अपने इन दावों के पक्ष में एक भी प्रमाण नहीं जुटा सकीं हैं। संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा अमेरिकी हमले के बार-बार विरोध के बावजूद, अमेरिका ने इराक पर हमला किया। इससे यह सच्चाई एक बार फिर उजागर हो गयी कि साम्राज्यवादी वर्चस्व वाली आज की दुनिया में विश्व जनमत का वास्तव में कोई मतलब नहीं रह गया है और रस्मी विरोध की तमाम कवायदों के बाद, सभी अन्तरराष्ट्रीय मंच वास्तव में साम्राज्यवादी हितों की सेवा करने वाले मंचों की ही भूमिका निभाते हैं।

सद्दाम हुसैन निश्चय ही एक पूँजीवादी शासक था और कुर्दों और शियाओं पर अस्सी और नब्बे के दशक में उसकी सत्ता ने जुल्म भी किये थे। पर उसके विरुद्ध संघर्ष इराकी जनता का काम था। अमेरिकी साम्राज्यवादियों ने मात्र इन अन्तरविरोधों का लाभ उठाया और इस बहाने इराक की तेल सम्पदा पर कब्जा ज़माने की कोशिश की। सद्दाम को "सजा" अपनी जनता पर दमन की नहीं, बल्कि इस बात की मिली कि उसने अमेरिकी साम्राज्यवादी वर्चस्व के मंसूबों को चुनौती दी।

साथ ही, हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि सद्दाम की बाथ पार्टी एक समय में एक ऐसी राष्ट्रीय जनवादी चरित्र वाली पार्टी के रूप में उभरी थी जो साम्राज्यवाद और उसके पिट्ठू शेखों-शाहों की निरंकुश सत्ता के विरुद्ध आम जनता की आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करती थी। बाथ पार्टी के शासन के दौरान, इराक में जनता को बहुतेरे जनवादी अधिकार मिले, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं के मामले में काफी प्रगति हुई तथा कला-साहित्य-संस्कृति का भी विकास हुआ। इराक तब एक धर्मनिरपेक्ष अरब देश था। उसके बाद, सद्दाम की सत्ता के चरित्र-परिवर्तन के पीछे उसी मूल तर्क ने अपनी भूमिका निभाई, जो तीसरी दुनिया के नवस्वाधीन देशों के तमाम बुर्जुआ शासकों के चरित्र-परिवर्तन का मूल कारण था। साम्राज्यवाद विरोधी संघर्षों की विजय के बाद, तीसरी दुनिया के बहुतेरे बुर्जुआ शासकों ने पूँजीवादी विकास के पहले चरण में बहुत सारे लोक कल्याणकारी काम किये। फिर धीरे-धीरे उनके चरित्र का प्रतिक्रियावादी पहलू प्रधान बनता चला गया और वे पूँजीवादी विश्व-व्यवस्था में व्यवस्थित होते चले गये। सद्दाम के साथ भी यही हुआ। अपनी क्षेत्रीय विस्तारवादी महत्वाकांक्षा और अन्य अरब देशों एवं ईरान के बुर्जुआ शासक वर्गों से प्रतिस्पर्द्धा के चलते ही उसने ईरान के विरुद्ध अमेरिकी शह पर युद्ध छेड़ा। इन आपसी अन्तरविरोधों का, स्वाभाविक तौर पर अमेरिका ने लाभ उठाया। यही दौर था जब सद्दाम की सत्ता जनता से कटकर दमनकारी होती चली गयी। साथ ही, इराकी जनता की साम्राज्यवाद विरोधी एकता भी विघटित होती चली गयी तथा शियाओं-कुर्दों- सुन्नियों के बीच अन्तरविरोध तीखे होने लगे। इसी दौरान, सद्दाम ने शियाओं-कुर्दों का दमन किया और बाथ पार्टी का सेक्यूलरिज़्म भी क्षरित-विघटित होता चला गया। साम्राज्यवादियों ने इन अन्तरविरोधियों का पूरा लाभ उठाया। अमेरिका आज भी अपने असली मकसद पर पर्दा डालने के लिए शियाओं और कुर्दों के हितों की दुहाई देता है और अब उसकी पूरी कोशिश यही है कि इन अन्तरविरोधों को खूब हवा देकर इराक को ही विघटित कर दिया जाये ताकि उसकी तेल सम्पदा पर कब्जा जमाना आसान हो जाये।

फौरी तौर पर ऐसा लग रहा है कि अमेरिका को अपने इस मक़सद में क़ामयाबी मिल रही है। लेकिन, दूरगामी तौर पर, इसके विपरीत होने वाला है। कमल पाने के लोभ में हाथी दलदल में और भीतर धँसता जा रहा है। सद्दाम की हत्या के बाद, तत्काल भले ही सुन्नी-शिया और कुर्द आबादी के आपसी संघर्ष सतह पर बढ़ते हुए दिख रहे हैं, लेकिन दूरगामी तौर पर, अमेरिकी साम्राज्यवाद-विरोधी इराकी जनता की, और न केवल इराकी जनता बल्कि समूची अरब जनता की, संग्रामी एकजुटता की मज़बूत ज़मीन तैयार हो रही है। संकट सिर्फ़ अमेरिका के लिए ही नहीं, बल्कि उन तमाम अरब शासकों के लिए भी गम्भीर होता जा रहा है जो अमेरिका के पक्षधर या उसके प्रति नरम या मध्यमार्गी हैं तथा जो फिलिस्तीनी जनता के हितों की सौदेबाजी और उसके प्रति विश्वासघात करते रहे हैं। साथ ही, साम्राज्यवादी ताकतों के आपसी अन्तरविरोध भी बढ़ते जा रहे हैं। अरब भूमि पर अमेरिकी साम्राज्यवाद के लगातार ज्यादा से ज्यादा फँसते जाने के साथ ही, न केवल पूरी दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में उसके विरोध के स्वर ज़्यादा से ज़्यादा मुखर होते जा रहे हैं बल्कि अन्य साम्राज्यवादी देश भी निकट भविष्य में अमेरिकी चौधराहट को फैसलाकुन चुनौती देने की कोशिशों में जुट गये हैं। यही नहीं अमेरिकी शासक वर्ग के भीतर के अन्तरविरोध भी गहराते जा रहे हैं। अरब क्षेत्र आज के पूँजीवादी विश्व के समस्त अन्तरविरोधों की एक ऐसी गाँठ बना हुआ है, जहाँ से, काफ़ी हद तक भविष्य के नये समीकरण तय होने हैं और पूँजीवाद विरोधी विश्वव्यापी संघर्ष की दिशा तय होनी है।

सद्दाम को फाँसी देकर अमेरिकी साम्राज्यवादियों ने न केवल बर्बर हमलावरों के इन्साफ़ की एक और मिसाल पेश की है, बल्कि एक ऐसी आग में घी डालने का काम किया है जिसमें खुद उन्हीं के हाथ जलने हैं और उन्हीं के मंसूबों को झुलसना और जलकर राख होना है।

आलोक रंजन

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी डा. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वाणी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंगः कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ।
सम्पादक : डा. दूधनाथ • सम्पादकीय पता : 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 • सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ